॥ श्रीः ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद्.

(वेदान्त ग्रन्थ)

मुरादाबादनिवासी पं० भोलानाथात्मज सना-
तनधर्मपताकासम्पादक ऋ० कु०
रामस्वरूपशर्म्मा कृत-
अन्वय-पदार्थ और भावार्थ सहित।

जिसको
खेमराज श्रीकृष्णदासने
बंबई
(खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन)
निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेसमें
मुद्रितकर प्रसिद्ध किया.
संवत् १९६९, शके १८३४.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ श्वेताश्वतरोपनिषद् ।

मूल, अन्वय, पदार्थ और भावार्थ सहित.

——❀——

प्रथम अध्याय ।

(हरिः ॐ) ब्रह्मवादिनो वदन्ति-

किं कारणं ब्रह्म ? कुतः स्म जाताः ? जीवाम केन ? क्व च संप्रतिष्ठिताः ? ॥ अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्मविदः) हे ब्रह्मवेत्ताओ (किम्) क्या (ब्रह्म) ब्रह्म (कारणम्)

कारणहै । (कुतः) कहां से (जाताः स्मः) उत्पन्न हुए हैं (केन) किस करके (जीवामः) जीते हैं (क्क च) और कहां (सम्प्रतिष्ठिताः प्रलय काले स्थिताः) प्रलयकालमें स्थित होते हैं (केन) किस करके अधिष्ठिताः (नियमिताः) नियम किये हुए (सुखेतरेषु) सुख दुःखों में (व्यवस्याम्—व्यवस्थाम्) व्यवस्था को (वर्तामहे) वर्त्ताव में लाते हैं ॥ १ ॥

(भावार्थ) ब्रह्मतत्त्व का विचार करनेवाले पण्डित ब्रह्मतत्त्व की खोज करने के लिये इकट्ठे होकर आपस में प्रश्न करते हैं कि— हे ब्रह्मज्ञानी विद्वानों ! ब्रह्म हीक्या इस सकल सृष्टिका कारण है ? या कारण के विनाही इस विश्व की उत्पत्ति होगई है ? हम कहां से उत्पन्न हुए हैं और कैसे जीवित रहे हैं ? प्रलय

के समय इस जगत् के सकल जीव कहां रहे थे ? और कहां रहेंगे ? अथवा प्रलयकाल में हम कहां थे और कहां रहेंगे ? किस निमित्त वा किस के करने से हम सुख दुःख में नियम के साथ समयको विताते हैं ? क्या इन सबका कारण ब्रह्म ही है ? या अपने आप ही यह जगत् उत्पन्न होकर चलता रहता है ॥ १ ॥

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा
भूतानि योनिः पुरुष इति चिंत्या ॥
संयोग एषां न त्वात्म भावात् आ-
त्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ–(कालः) काल (स्वभावः) स्वभाव (नियतिः) प्रारब्ध (यदृच्छा) आकस्मिक बनाव (भूतानि) पञ्चभूत (पुरुषः)

पुरुष (योनिः) कारण है । (इति) यह (चिन्त्या) विचारणीय है । (आत्मभावात्) आत्मा के विद्यमान होने से (एषाम्) इनका (संयोगः) संयोग (न तु) कारण नहीं है (सुखदुःखहेतोः) सुख दुःख के कारण (आत्मा अपि) आत्मा भी (अनीशः) जगत् की उत्पत्ति करने में समर्थ नहीं है ॥ २ ॥

(भावार्थ)--इस विश्व ब्रह्माण्ड के विपारिणाम (लौटबदल) का हेतु अर्थात् सृष्टि,स्थिति और प्रलय का आधार कालही क्या जगत् की प्रलयउत्पत्ति का कारण है ? या पदार्थ की नियमित शक्तिके स्वभाव से विश्व उत्पन्न हुआहै ? अर्थात् अपनी २ स्वाभाविक शक्तिके कारण ही क्या सकल पदार्थ अपने आप उत्पन्न होगए हैं ? अथवा पूर्वजन्मों के पाप पुण्य के फल के अनुसार नियति (प्रारब्ध) ने ही इस ब्रह्माण्ड को रचदिया है । या किसी

कारण के बिना ही अकस्मात् इस विश्व की उत्पत्ति होगई है ? अथवा आकाश आदि पञ्चभूत वा विज्ञानमय आत्मा ही क्या इस अनन्त जगत्की उत्पत्ति का कारण है ? इस का निश्चय करना चाहिये । जब कि देश, काल और कारण के अच्छे प्रकार से इकट्ठे विना हुए कोई पदार्थ ही उत्पन्न नहीं होता, तब अलग २ काल आदिको जगत् की उत्पत्ति का कारण कैसे कहाजासकता है ? और आकाश आदि पञ्चभूत का विनाश होने पर भी जब आत्मा का विनाश नहीं होता है तब आकाश आदि पंचभूत और आत्मा इनके संयोग को भी विश्वसृष्टि का उत्पन्न करनेवाला नहीं कहा जासकता है, केवल जीवात्मा को भी जगत् को उत्पन्न करनेवाला कारण नहीं कहा जासकता, क्योंकि-जीवात्मा को सर्वदा ही

पुण्य और पाप रूप कर्मोंके अनुसार सुख और दुःख भोगने पडते हैं, अतएव कर्माधीन जीवात्मा कदापि विश्वविधान का हेतु नहीं होसकता ॥ २ ॥

ते ध्यानयोगाऽनुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ॥ यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एकः) एक (कालात्मयुक्तानि) काल जीवात्मा आदि युक्त (तानि) तिन कारणानि)कारणोंको (अधितिष्ठति) नियम में रखता है (ते) वह ब्रह्मवादी (ध्यानयोगानुगताः) ध्यानयोग में लगतेहुए (स्वगुणैः)अपने गुणों से (निगूढाम्)

छुपीहुई (देवात्मशक्तिम्) परमेश्वर की आत्म-शक्ति को (अपश्यन्) देखते हुए ॥ ३ ॥

(भावार्थ)—जगत् की उत्पत्ति के अनेकों कारणों का वर्णन होने के अनन्तर उन ब्रह्म-वादी विद्वानोंने ध्यानयोग से चित्तको सावधान करके जाना कि—जिस अद्वितीय परमात्मा ने काल जीवात्मा नियति आदि पहिले कहेहुए कारणों को नियम में कररक्खा है अर्थात् पहि-ले वर्णन किए हुए काल,स्वरूप आकाश आदि सकल भूत जिसके अधीन हैं, उस परात्पर परत्मात्मा की प्रकृतिसे आच्छादित आत्मशक्ति ही इस विश्व ब्रह्माण्ड को रचनेवाली है अर्थात् जब परम पुरुष परमा प्रकृति के साथ मिलते हैं तब उन के उस मिलन से उत्पन्न हुई वर्णन करने में और विचार पर्यन्त में न आनेवाली किसी शक्ति ने ही इस विश्व को रचा है नहीं तो

पहले कहे हुए कारणों में से कोई भी एक स्वतंत्र होकर जगत् को उत्पन्न नहीं कर सकता क्योंकि यह सबही कारण उस परमपुरुष के अधीन हैं, वह ही इन सब कारणों का एकमात्र परिचालक है। उसके चलाये बिना इन सब कारणों में से कोई भी किसी का कारण नहीं हो सकता। "स्वगुणैर्निगूढाम्" इस का यह अर्थ भी किया-जा सकता है कि—स्वगुण अर्थात् परमेश्वर के अपने गुण सर्वज्ञता, आदि के द्वारा आच्छादित जो आत्मशक्ति अथवा स्वगुण कहिये सत्त्व रज तम इन तीन गुणों से ढकीहुई जो आत्मशक्ति अर्थात् सत्त्वगुण में विष्णु रजोगुण में ब्रह्मा, और तमोगुण में रुद्ररूप से जिस की अपनी शक्ति इस जगत की उत्पत्ति, पालन और प्रलय का कारण होती है ऐसी जो आत्मशक्ति अथवा स्वगुण कहिये ब्रह्म के वशीभूत प्रकृति आदि

उपाधि के द्वारा छुपीहुई दूसरे के जानने में न आनेवाली जो आत्मशक्ति वह प्रत्येक पदार्थ में अदृश्य भाव से विराजरही है। इस के कुछ आगे ही कहाजायगा कि--"एको देवः सर्वभूतेषु गूढः"। एक परमात्मा सब प्राणियों में गुप्तभाव से विद्यमान है। ऐसी आत्मशक्ति को ही ब्रह्मवादियों ने विश्व की रचनेवाली जाना। और भी कई प्रकार की व्याख्या होसकती है जो कि--विस्तार के भय से यहां नहीं लिखी है॥३॥

तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशांतं शतार्धारं विंशतिप्रत्यराभिः। अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम्॥ ४॥

अन्वय और पदार्थः--(एकनेमिम्) एक है नेमि कहिये चक्रधारा जिस की ऐसे (त्रिवृ-

तम्) तीन से ढके हुए (षोडशान्तम्) सोलहहैं अन्त भाग जिसके ऐसे (शतार्द्धारम्)सौके आधे पचास हैं, अर जिसमें ऐसे (विंशतिप्रत्यराभिः) बीस प्रत्यराओं से (षड्भिः छः (अष्टकैः) अष्टकों से (विश्वरूपैकपाशम्) नानारूप एक पाशवाली (त्रिमार्गभेदम्) तीन मार्ग का है भेद जिसमें ऐसे(द्विनिमित्तैक मोहम्)दो निमित्त से उत्पन्न हुए एक मोह वाले को ॥ ४ ॥

(भावार्थ) तत्त्वदर्शी विद्वानोंने जिस ब्रह्म-चक्र को विश्व की उत्पत्तिके हेतु रूप से निश्चय किया था, अब उस ही ब्रह्मचक्र की व्याख्या करते हैं–अनादि अनन्त आकाश इस सर्वात्मक विश्वरूप ब्रह्मचक्र की नेमि अर्थात् चक्र की धारास्वरूप है इस महाचक्र की अवधि (हद्द) महान् आकाश है। सत्त्व, रज, तम, यह तीन

गुण इस ब्रह्मचक्रको घेरे हुए हैं। पाँच कर्मेन्द्रिय

पांच ज्ञानेंद्रिय, एक मन, पाँच महाभूत यह सो-
लह प्रकारके पदार्थ इस चक्र के अन्तभाग हैं,
पचास अर कहिये चक्र शलाका हैं, जैसे अरों
(चक्र शलाओं) से चक्र खूब दृढ रहता है
तैसे ही तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धता-
मिस्र यह पाँच प्रकारके विकार ग्यारह प्रकार
की इन्द्रियों की नौ प्रकार की तुष्टि की और आठ
प्रकारकी सिद्धिकी, ऐसे अट्ठाईस अशक्ति, नौ
प्रकार तुष्टि और आठ प्रकारकी सिद्धि सब मि-
लकर इन पचास प्रकारकी चक्रशलाकाओंसे,
जिस का वर्णन कियाजायगा वह ब्रह्मचक्र
दृढताके साथ जकड़ा हुवा है। उन चक्रशला-
काओं की दृढता करने के निमित्त जैसे नेमि
और चक्रशलाका इन दोनों का मेल होने के
स्थान पर कीलें ठोकी जाती हैं, तैसे ही इस
ऊपर वर्णन किये ब्रह्मचक्र के अरों (चक्रश-

लाकाओं) को दृढ़ करने के लिये चक्षु, कर्ण नासिका, जिह्वा, त्वचा, वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ यह दश प्रकार की इन्द्रियें और रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, बोलना, ग्रहण करना, गमन, परित्याग और आनन्द यह दश प्रकार के इन्द्रियों के विषय सब मिलकर यह बीस प्रत्यर (कीले) लगाएगए हैं। इस चक्र में छः अष्टक हैं। जैसे (१) भूमि, जल, अग्नि वायु आकाश, मन बुद्धि, और अहंकार यह प्रत्यष्टक। (२) चर्म, मांस, रस, रुधिर, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र यह धात्वष्टक। (३) अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, और कामावसायिता यह ऐश्वर्याष्टक। (४) धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य यह भावाष्टक।

(५) ब्रह्मा, प्रजापति, देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितृ और पिशाच यह देवाष्टक। (६) दया, शान्ति, अनसूया, शौच, अनायास, मंगल, अकार्पण्य और अस्पृहा यह गुणाष्टक हैं। यह सब भी इस ब्रह्मचक्र के अन्तर्भूत हैं। स्वर्ग, पुत्र आदि और अन्त आदि विषय की इच्छा यह चक्र के पाशस्वरूपहैं। धर्म, अधर्म और अज्ञान यह तीन प्रकार का मार्ग इस चक्र के विचरने की भूमि है अर्थात् धर्म, अधर्म, और अज्ञान, इन तीन मार्गों में को यह चक्र चलाया जाताहै। इन तीन के सिवाय इस चक्र का और कोई मार्ग नहीं है। पाप और पुण्य के कारण उत्पन्न हुए, देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और जाति, आदि अनात्म पदार्थों में आत्माभिमान करना ही इस महाचक्र का निमित्त है

अभिमान के कारण ही यह चक्र घूमता है। ऐसे बड़ेभारी ब्रह्मचक्र से यह सकल विश्व उत्पन्न हुवा है, यह ही तत्त्वज्ञानी विद्वानों ने निर्णय किया था ॥ ४ ॥

पंचस्रोतोऽम्बुं पंचयोन्युग्रवक्रां पंच-
प्राणोर्मिं पंचबुद्ध्यादिमूलाम् ।
पंचावर्तां पंचदुःखौघवेगां पंचाशद्भे-
दां पंचपर्वामधीमः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पंचस्रोतोम्बुम्) पांच सोते हुए हैं जल स्थान जिस के ऐसी (पंचयोन्युग्रवक्राम्) पांच योनियों से उग्र और वक्र (पंचप्राणोर्मिम्) पांच प्राण हैं तरंगें जिस की ऐसी (पंचबुद्ध्यादिमूलाम्) पांचज्ञानों का कारण जो मन वह ही है मूल जिस का ऐसी (पंचावर्ताम्) पांच विषय

हैं भँवर जिस के ऐसी (पंचदुःखौघवेगाम्) पांच प्रकार के दुःखों का समूह ही है वेग जिस का ऐसी (पंचाशद्भेदाम्) पचास हैं भेद जिस के ऐसी (पंचपर्वाम्) पांच हैं फांट जिस के ऐसी, नदीरूप सृष्टि को (अधीमः) जानते हैं ॥ ५ ॥

(भावार्थ) अब पहिले वर्णन किए हुए ब्रह्मचक्र का नदीरूप से वर्णन करते हैं चक्षु आदि पांच ज्ञानेन्द्रियें इस नदी का जल हैं। पृथिवी आदि पंचभूतों के कारण यह नदी अति भयानक है और टेढी होरही है। पांच प्रकारके वायु की परम ताडना से इस नदी में बडी भारी तरङ्गें उठरही हैं अथवा वाक्, पाणि, पाद, पायु, और उपस्थ यह पांच प्रकार की कर्मेन्द्रियें इस

नदी की तरंगें हैं। मन ही इस नदी का मूल सोता है। जितने भी ज्ञान हैं सब का हेतु एकमात्र मन ही है इस सब ज्ञानोंके आदि-कारण मन से ही इस नदी की उत्पत्ति हुई है और जिस समय यह मन सब विषयोंसे निरक्षेप होकर एकमात्र अनूपम आनन्द में निमग्न और परमशान्त होता है उस समय यह नदी भी तिस प्रशान्तसागर में ही मिलजाती है। फिर उस समय द्वैताद्वैत का भेद नहीं रहता है। जब तक मन का मनोभाव दूर नहीं होता है तब तक ही यह जगत् रूप प्रपञ्च है और तब तक ही भेदबुद्धि है इस कारण ही मन को इस महानदी का मूल कहा है मन ही सब का हेतु है। इस बात को और शास्त्रों में भी कहा है-"मनोविजृम्भितं सर्वं यत्किञ्चित्स-

चराचरम् । मनसोऽह्यमनोभावे द्वैतं भित्त्वोपलभ्यते ॥" मन की सर्वत्र ही प्रभुता है। इस मन के ऊपर जो प्रभुता करसकते हैं, उनकी दृष्टिमें फिर द्वैत अद्वैत का भेद नहीं रहता है। उस समय वास्तविक सत्य उनके विवेक रूपी दर्पण में निरन्तर प्रतिबिम्बित होता रहता है। उन के सब सन्देह विलीन होजाते हैं। वास्तव में मन ही सब प्रकार के बोधका आदिकारण है। इसी कारण मन को इस संसाररूपी नदी का मूल अर्थात् उत्पत्तिस्थान कहा है। रूप, शब्द, गन्ध, रस, और स्पर्श यह पांच प्रकार के इन्द्रियों को प्राप्त होनेवाले विषय इस नदीके आवर्त कहिये जलके भँवररूप हैं, क्यों कि-इस संसाररूप नदी के बड़े भारी जल के भँवरकी समान शब्द आदि पांच

प्रकार के विषयों में डूबकर प्राणी वास्तव में पहुँचने योग्य स्थान पर नहीं पहुँच सकते हैं जैसे कि—कोई जलमार्ग से यात्रा करनेवाला अचानक जल के भँवर में पडजानेपर फिर अपने पहुँचने के स्थान पर नहीं पहुँच सकता है, किन्तु सोतेके बड़े भारी वेग के कारण अङ्ग शिथिल होजाने से क्रमशः डूबता चलाजाता है । तैसे ही इस दुरन्त तरंगों से भरे हुए संसाररूपी समुद्रके जिसके पार होना कठिन है ऐसे शब्दादि विषयरूप बडे भारी भँवर में जब प्राणी फँसजाते हैं तो फिर उन का निस्तार होना कठिन पड़जाता है और धीरे २ अथाह अज्ञान गर्भमें जाकर डूबजाते हैं, इसीकारण शब्दादि को भँवररूप कहा है । गर्भवास का दुःख, जन्मते समय का दुःख बुढापे का दुःख

रोग का दुःख और मरते समय का दुःख यह पांच प्रकार की यातना अटल प्रभाव के साथ सदा संसारमें विचरती रहती है। नदी जैसे वेग की अधिकता होने के कारण परमभयानक आकार को धारण करती है, तैसे ही यह संसाररूपी महानदी ऊपर कहे पांच प्रकारके दुःखों को अटल भावसे देनेके कारण महाभयदायक होरही है अविद्या अस्मिता, राग द्वेष और अभिनिवेष इस प्रकार के क्लेशसे यह संसाररूपी नदी भरी हुई है अर्थात् यह पांचों क्लेश हरसमय संसार में रहकर प्रतिक्षण ससांरी जीवों के हृदय में मर्म भेदी दुःख देते रहते हैं सकल दुःखों के आदि कारण यह पांच प्रकारके क्लेशही हैं ॥४॥

सर्वाऽऽजीवे सर्वसंस्थे बृहंते अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे। पृथगात्मानं

प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनाऽमृ-
तत्वमेति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(हंसः—हन्ति गच्छति इति हंसो जीवः) जीव (सर्वाजीवे) विश्व में के सकल पदार्थों की जीवनभूमि (सर्वसंस्थे) सकल पदार्थों के प्रलयस्थान (बृहन्ते—बृहति) अति महान् (अस्मिन्) इस (ब्रह्मचक्रे) ब्रह्मचक्ररूप ब्रह्माण्ड में (आत्मानम्) जीवात्माको (प्रेरितारम् च) और प्रेरणा करनेवाले ईश्वर को (पृथक्) भिन्नरूप (मत्वा) मानकर (भ्राम्यते) जन्म मरण के चक्र में वारम्वार घूमता है (ततः) तदनंतर (तेन) उस ईश्वर के द्वारा (जुष्टः) अनुग्रह का पात्र होता हुवा (अमृतत्वम्) मोक्ष को (एति) प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

(भावार्थ) यह विश्व चक्ररूप बहुत ही बड़ा ब्रह्माण्ड विश्व के सकल ही पदार्थों की जीवनभूमि है। इस अनन्त ब्रह्माण्ड में ही सकल प्राणी उत्पन्न होकर पलते हैं और उस में ही प्रलय को प्राप्त होजाते हैं। आत्मा और ईश्वर इन दोनों में भेद मानकर जीव बार २ इस संसारक्षेत्र में आवागमन करता है। जब वह भेदभाव दूर होजाता है और निश्चयरूप से यह जानाजाता है कि-यह दोनों एकरूपही है तब अमरपना प्राप्त हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जीवात्मा और परमात्मा में भेद जानना ही संसार में बार २ जन्म मरण होने का कारण है जबतक यह द्वैतभाव जीव के अन्तःकरण में जमा रहता है तबतक इसको बार २ दुःखभरे संसार में आवाजाई करनी पड़ती है। जो कि आत्मा नहीं है ऐसे जड देह आदि को आत्मा

समझनेके कारण जीवात्मा और ईश्वरको भिन्न समझकर मोहसे अन्धा हुआ जीव देह मनुष्य पशु-पक्षी आदि अनेकों योनियों में घूमता है अनन्त काल तक गर्भ में की और उत्पन्न होने के समय की पीड़ाओं को पाकर संसार के असंख्यों क्लेशों के कारण जीर्ण होजाता है, फिर जब जीव का यह भाव दूर होजाताहै; तब श्रेष्ठ गुरुके उपदेश और चित्तकी शुद्धि आदिसे हृदयका वह विषैला संस्कार विनष्ट होजाताहै, सच्चिदानन्द, अद्वितीय ब्रह्म और आत्मा एक ही है ऐसा समझने लगता है अर्थात् "ब्रह्म मैं ही हूं" जब ऐसा ज्ञान होजाता है तब जीव को बन्धन की पीड़ा नहीं भोगनी पडती तब वह आत्माको पूर्णानन्दब्रह्मस्वरूप समझकर अमृतत्व पाता है और सब दुःख दूर होजाते हैं सार यह है कि-जो आत्मा को पूर्णानन्द ब्रह्म

स्वरूप जानसकते हैं वह ही मुक्ति पाते हैं और जो आत्मा को परमात्मा से पृथक् मानते हैं उन को बार बार संसारबन्धन में बँधना पडता है, आत्मा और परमात्मा में भेद दृष्टि रखना ही संसार में आवागमन का मुख्य कारण है इस विषय पर बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा है—

"य एव वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति तस्येह न देवाश्च न भूत्या ईशते । आत्मा ह्येषां स भवति, अथ योऽन्यां देवताम् उपास्ते, अन्याऽसौ, अन्योहमस्मीति न स वेद । यथा पशुरेवं स देवानामिति" विष्णुधर्म में भी कहा है—" पश्यत्यात्मानमन्यन्तु यद्वै परमात्मनः । तावत्स भ्राम्यते जन्तुर्मोहितो निजकर्मणा ॥ संक्षीणाशेषकर्मा तु परब्रह्म प्रपश्यति । अभेदेनात्मना शुद्धं शुद्धत्वादक्षयो भवेत्।" इसका अर्थ यह है कि—जबतक जीव अपनेको परमात्मासे

भिन्न जानता है, जबतक यह भेदबुद्धि दूर नहीं होती है तबतक यह अपने दुर्विपाक कर्मजाल से मोहित होकर इस संसार में घूमता रहता है, फिर जब इस के समस्त कर्म शेष होजाते हैं, भेदबुद्धि दूर होजाती है, आत्मा और परमात्मा को एक समझनें लगता है तब यह परमशुद्ध होकर संसारबन्धन से छूटजाता है, हृदय के सब सन्देह दूर होजाते हैं और पहिले कभी न चखे हुए रस से मन तृप्त होजाता है ॥ ६ ॥

उद्गीतमेतत्परमन्तु ब्रह्म, तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरञ्च । अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एतत्) यह (परमम्) परम (ब्रह्म) ब्रह्म (तु-एव) ही (उद्गीतम्)

वेदान्त आदिमें उपदेश किया गयाहै (तस्मिन्) उसमें (त्रयम्) भोक्ता, भोग्य और नियंता यह तीन भाव हैं (सुप्रतिष्ठा) उत्तम प्रतिष्ठा का आधार (अक्षरम् च) अविनाशी भी है (अत्र) इस जगत् में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मवेत्ता (अन्तरम्) जिस को जगत् प्रपञ्च स्पर्श नहीं कर सकता है ऐसे ब्रह्म को (विदित्वा) जानकर (तत्परा) ब्रह्मचिन्तवन में तत्पर होते हुए (ब्रह्मणि) ब्रह्म में (लीनाः) लीन होकर (गर्भमुक्ताः) गर्भ, आदि की पीड़ासे मुक्त (भवन्ति) होते हैं ॥ ७ ॥

(भावार्थ) इस से पहिली श्रुतियों में कार्य कारणस्वरूप प्रपञ्च सहित ब्रह्म के विषय का व्याख्यान किया गया है अर्थात् मायास-हित ब्रह्म ही इस जगत की उत्पत्ति का आदि कारण है और आत्मा तथा ब्रह्म की अभेद बुद्धि

ही मुक्ति का कारण है, यह बात दिखाई गई। परन्तु 'तं यथोपासते तदेव भवति' उस को जिस प्रकारसे उपासना की जाती है उपासक तैसा ही होजाता है, इस वेदवाक्य से मायामय ब्रह्म की उपासना में मोक्षपद की प्राप्ति असम्भव हुई जाती है, इसी लिये छठी श्रुति के अन्त में 'जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति' इस वाक्य का किया-हुआ मोक्षोपदेश अयुक्त हुआ जाता है, इत्यादि विरोधरूप सन्देह को दूर करने के लिये इस ७वीं श्रुति में कहा है कि--मायासंवलित प्रपञ्चसहित ब्रह्म विश्वविधान का कर्ता है, यह ठीक है, वेदान्त आदि में इस विषय की निर्विरोध मीमांसा कीगई है। परन्तु मायाविशिष्ट ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति होनेपर भी मनन आदिके समय ब्रह्म की उस गुणातीत परमावस्था का ही ध्यान किया जायगा अर्थात् प्रपञ्चसहित परम

ब्रह्म की आराधना करनी होगी ऐसा होने पर ही -'तं यथा उपासते तदेव भवति।'इस श्रुतिकी मर्य्यादा रक्षित होती है।परमब्रह्म की उपासना के फल से परमोत्तम फल मुक्ति प्राप्त होगी। यहाँ और एक यह भी प्रश्न हो सकता है कि--जब ब्रह्म की गुणयुक्त और गुणातीत दो प्रकार की अवस्था वर्णन की गई तब अद्वितीय ब्रह्म के चिन्तवन से मुक्ति होती है, यह पहिले कहा हुवा वाक्य कैसे ठीक रहा ? क्यों कि--ऊपरके वाक्य से ही ब्रह्म की अद्वितीयताके खण्डन के साथ उसको दो प्रकार का कहा गया है इस संदेहको दूर करने के लिये ही इस श्रुति के दूसरे चरण में कहा गया है कि--प्रपञ्चातीत और प्रपञ्चयुक्त इस दो प्रकार की अवस्था का अर्थ दूसरे प्रकार का है अर्थात् ब्रह्म जगत्प्रपञ्च से सदा असंसृष्ट (स्पर्शरहित)

है, परन्तु माया आदि प्रपञ्च उससे अलग नहीं है, क्योंकि-भोक्ता (भोगनेवाला) भोग्य (भोगने योग्य) और प्रेरक यह तीनों उस ब्रह्म में ही स्थित हैं कुछ आगे चलकर इस विषय में कहा जायगा कि-'अजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थ प्रयुक्ता ।' वह मायातीत है, परन्तु माया आदि का उस से भिन्न और कोई आधार नहीं है। उस की एक मायामय विकृत अवस्था से ही जगत् उत्पन्न हुवा है, परन्तु वह स्वरूप में जगत् के सकल व्यापारों से पृथक् है। जगत् के कर्म में उस की आसक्ति नहीं है यह अनन्त ब्रह्मांड उस गुणातीत परब्रह्म में अति उत्तमता के साथ प्रतिष्ठित है; उसके विकार आदि यद्यपि प्रपञ्च का आश्रय होने के कारण क्षय-परिणामी है परन्तु वह स्वयं अक्षर अर्थात् अविनाशी, नित्य है, क्योंकि उस का विकार ही

माया स्वरूप है, वह माया स्वरूप नहीं है; वह विकाराश्रयी होनेपर भी सर्वदा ही कूटस्थ, अचल, नित्य और सब विषय में निर्लिप्त है। ब्रह्मतत्त्व का अनुशीलन करनेवाले पण्डित; उसकी इस माया आदि के स्पर्श से रहित निर्गुण निर्विकल्प और मन वाणी की अगोचर व्यवस्था को जानकर आत्मा के साथ ब्रह्म का अभेद हृदयंगम कर उसमें लीन होजाते हैं और इस महा समाधिका आश्रय लेकर जन्म मरण आदि के सकल दुःखों से रक्षा पाते हुए संसार भय से छूटकर अमृत पद (मोक्ष) पाते हैं। आत्माके साथ गुणातीत परमात्मा के अभेद ज्ञान का दूसरा नाम समाधि है। इस समाधि से ही परमात्मा का दर्शन होकर मुक्ति मिलती है, इस विषय में योगि याज्ञवल्क्य ने भी ऐसाही कहा है ॥ ७ ॥

संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरञ्च, व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः। अनीशश्चात्मा वध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥ ८॥

अन्वय और पदार्थ-(ईशः) ईश्वर (संयुक्तम्) परस्पर संयुक्त (क्षरम्) विनाशी (च) और (अक्षरम्) अविनाशी (व्यक्ताव्यक्तम्) व्यक्त कहिये विकार से उत्पन्न हुए और अव्यक्त कहिये विकारसे उत्पन्न न हुए (विश्वम्) सकल विषयों को (भरते) भरण करता है (च) और (अनीशः) ईश्वरत्वरहित (आत्मा) जीवात्मा (भोक्तृभावात्) सुख दुःख आदि का भोक्ता होने के कारण से (वध्यते) अविद्या से बँधजाता है (देवम्) परम पुरुष को (ज्ञात्वा)

जानकर (सर्वपाशैः) सकल बन्धनों से (मुच्यते) छूटजाता है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-पहिली कारिकाओं में परब्रह्म का अद्वितीयपना और जीवात्मा की अभेदबुद्धि को मुक्ति का हेतु होना दिखाया है अब जीवात्मा और परमात्मा का सामयिक उपाधिकृत भेदके सिवाय वास्तव में कुछ भेद नहीं है, यह बात दिखाते हैं-विश्व का कार्य कारणभाव दो प्रकार का है, एक व्यक्त और दूसरा अव्यक्त। जो विकार से उत्पन्न हुआ है; उस को व्यक्त कहते हैं, और जो विकार से उत्पन्न नहीं हुआ है उसको अव्यक्त कहते हैं, जो किसी प्रकार के विकारयुक्त भाव से उत्पन्न हुआ है वही विनाशी कहिये क्षर है और जो विकृतभावसे उत्पन्न नहीं हुआ है वही अविनाशी कहिये अक्षर है।

यह अव्यक्त अर्थात् विकारसे उत्पन्न होनेवाला नित्य कारणही भगवान् कपिलजीके मतमें 'मूल प्रकृति' कहाताहै।इसीकारण ईश्वरकृष्णने कहाहै 'मूलप्रकृतिरविकृतिः'। अव्यक्त कारण समय विशेष पर व्यक्तभाव धारण करता हुआ विकृत होजाता है, वह अव्यक्त का ही अंश है, केवल उपाधि के भेद से व्यक्तरूप में भासमात्र होता है। अव्यक्त के इस उपाधि से ग्रसे हुए व्यक्तभाव से ही विश्व की उत्पत्ति हुई है।क्योंकि– अव्यक्त, अविकृत, अतीन्द्रिय कारण से व्यक्त अर्थात् विकृत इंद्रियों से ग्रहण कीजानेवाली, सकल सृष्टि की उत्पत्ति होना सम्भव है। इसीलिये अव्यक्त की इस व्यक्तरूप अवस्था को भी व्यक्तस्वरूप जगत् का कारण कहागया है। अत एव एकाग्रता के साथ ध्यान देने पर प्रतीत होता

है कि—जगत् का प्रयुज्य (प्रेरित होने योग्य) कारण अव्यक्त के ही अधीन है, तब परम्परा-सम्बंध से प्रयोजक, अव्यक्त कारण भी जगत् की सृष्टि का कारण है। इसी लिये कहा गया है कि—विश्व के कार्य कारण दो प्रकार के हैं व्यक्त और अव्यक्त परमेश्वर इस व्यक्त और अव्यक्त दोनों कारणों वाले कार्यरूप विश्वका भरण करता है। उपाधि के कारण कुछ समय को प्रतीत होनेवाले भेद के सिवाय उन के साथ जीवात्माका वास्तव में कोई भेद नहीं है उपाधियुक्त जीवात्मा उस उपाधिशून्य परमात्मा का ही प्रतिबिम्ब है। एक वस्तु जल ही जैसे कुछ समय के लिये बरफरूप बनजाता है; परन्तु उस का वह बरफरूप परिणाम भी जल के सिवाय और कुछ नहीं है। तैसे ही एक परमात्मा ही सृष्टि रचने

की इच्छा के कारण जीवात्मा रूप से उपाधि युक्त होजाता है, परन्तु वह उपाधिगत जीवात्मा का परिणाम परमात्मा के सिवाय और कुछ नहीं है । उपाधिग्रस्त जीवात्मा ही जब उपाधि से मुक्त होता है तब उस में और परमात्मा में कुछ भेद नहीं रहता। यह क्षेत्र विशेषमें कार्य भेद से भिन्नरूप प्रतीत होने पर भी वास्तव में एक है। अन्तर इतना ही होता है कि-जीवात्मा अनीश अर्थात् किसी विशेष अवस्था के वश में है और परमात्मा ईश अर्थात् सब अवस्थाओं में स्वाधीन है। अधीन जीवात्मा कर्म का शुभ अशुभ फल भोगता है और स्वाधीन परमात्माका कर्म वा कर्मका फल किसी के भी अधीन नहीं है। फल भोगना पडता है, इसलिये ही जीवात्मा को, मुक्ति न पाने तक अविद्या और

अविद्या के कार्य देह इंद्रिय आदि की कठिन-
ता से टूटनेवाली फांसी में बँधना पडता है।
परमात्मा को फल नहीं भोगना पडता है
और वह अविद्याके वश में भी नहीं होता है
ऐसा कूटस्थ अक्षर अर्थात् अविनाशी उत्तम
पुरुष ही परमात्मा कहाता है। यह अवि-
नाशी पुरुष ही त्रिलोकी का भरण करता है
एक, यह ही सत्य है और यही सनातन है
और सकल भूत अनित्य हैं। यही बात भग-
वान् ने गीता में कही है कि—"क्षरः सर्वाणि
भूतानि कूटस्थोऽक्षरः उच्यते। उत्तमःपुरु-
षस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः॥ यो लोकत्रय-
माविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥" उपाधि से
विकार को प्राप्त हुआ जीव ऐसे जब निरुपा-
धिक परमात्मा को, उपाधिगत जीवात्मा से
प्रथक नहीं जानता है तब इस के सकल

बन्धन दूर होजाते हैं भेदबुद्धि दूर होने से उस का भी भेद दूर होकर परम पुरुष का सायुज्य प्राप्त होता है। यह सब उपाधिग्रस्त भेद उस परमपुरुष का ही है, उस को छोड़कर और कुछ है ही नहीं जब ऐसा ज्ञान उत्पन्न होजाता है तब जगत् के सकल पदार्थों का स्वरूप ज्ञात होजाता है और वस्तु के स्वरूप का ज्ञान अर्थात् सकल वस्तुओं के धर्म मालूम होने से उन सब जाने हुए पदार्थों का नाशवान् पना आदि ज्ञात होकर अन्तःकरण में से मिथ्या वस्तुओं में जड़ीहुई आसक्ति दूर होजाती है। उस आसक्ति के दूर होने से हानि लाभ का दुःख सुख भी मन को चलायमान नहीं करसकता है। वह चित्त की अस्थायी चंचलता दूर होजाने पर जीव का मन और प्राण अतुल अनन्त ब्रह्मानन्दरस में मग्न होजाते

हैं। एक अद्वितीय परमात्मा ही उपाधिग्रस्त आत्मारूप से अनेकों पदार्थों में विराजता है इस बात को दिखाने के लिये भगवान् याज्ञवल्क्य ने कहा है "आकाशमेकं हि यथा घटादिषु पृथग्भवेत्। तथात्मैको ह्यनेकश्च जलाधारेष्विवांशुमान्" जैसे एक महा आकाश घर घट आदि भिन्न २ उपाधियों में भिन्न २ रूप का प्रतीत होता है, वास्तव में वह महाकाश से अलग नहीं हैं, क्योंकि घर घट आदि का नाश होने पर फिर वह अलग प्रतीत नहीं होता, किन्तु इस महाकाश में ही मिलजाता है अथवा जैसे एक ही सूर्य, जल के भरे हुए अनेकों पात्रों में प्रतिबिम्बित होकर अनेकों रूप का प्रतीत होता है; परन्तु ऐसा होने पर भी वास्तव में वह सूर्य एक से अधिक नहीं होता है, तैसे ही एकमात्र आत्मा भी उपाधि के भेद से

अनेकों रूप धारण करता है, परन्तु वास्तव में वह एक है ॥

आत्मा जबतक प्रकृति के सत्वादि गुणों से युक्त रहता है तबतक भिन्न प्रतीत होता है, यह ठीक है, परन्तु जब उन गुणों से छूटकर शुद्ध होजाता है, तब परमात्मा शब्दसे कहाने लगता है । आत्मा अविद्या से आच्छन्न होकर अपने में स्थित परमब्रह्म तत्त्व को भिन्न मानता है और अविद्या से छूटजाने पर ऐसा भाव भी दूर होजाता है । विष्णुधर्ममें इस विषय पर कहाहै किस 'आत्मा क्षेत्रज्ञसंज्ञोऽयं संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः । तैरेव विगतः शुद्धः परमात्मा निगद्यते। अनादिसम्बन्धवत्या क्षेत्रज्ञोऽयमविद्यया । युक्तः पश्यति भेदेन ब्रह्मत्वात्मनि संस्थितम् "॥

अब यहां प्रश्न यह उठता है कि प्रकृति के सत्त्व आदि गुणों का संसर्ग होने के कारण

आत्मपुरुष में किसी प्रकार की मलिनता आती है या नहीं? उस गुणयुक्त अवस्था के दूर होने पर गुणों के धर्मों का आश्रय होने के कारण उत्पन्न हुए विकार का स्पर्श उस अविकारी पुरुष में होता है या नहीं? इस के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि जैसे धुआँ, अवर, धूलि आदि से आकाश का वर्ण बदलाहुआ प्रतीत होने पर भी आकाश में वास्तव में किसी प्रकार की मलिनता नहीं आती, तैसे ही पुरुष प्रकृति के सत्त्व आदि गुणों से युक्त होकर अनेकों आधारों में जीवात्मारूप से विरा जता है. परंतु जब गुणों से युक्त होकर अपनी वास्तविक अवस्था को प्राप्त होता है, तब उस में भी किसी प्रकार का विकार वा मलि-नता संयुक्त नहीं रहती है। ब्रह्मपुराणमें यही बात कही है कि—"धूमाभ्रधूलिभिर्व्यो-

म यथा न मलिनीयते । प्राकृतैरपरामृष्टो विकारैः पुरुषस्तथा ॥ ” शुकदेव जी के शिष्य गौडपादाचार्य ने भी कहा है कि—“यथैकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमादिभिर्युते । न सर्वे सम्प्रयुज्यन्ते तद्वज्जीवाः सुखादिभिः ॥”
अतएव परमात्मा में उपाधिग्रस्तता होने के कारण से ही जीव और ईश्वर के भेदकी व्यवस्था सिद्ध हुई । सुख दुःख आदि का भोग करनेवाला एकमात्र कर्त्ता वह उपाधिग्रस्त जीवात्मा ही है विशुद्ध सत्त्वोपाधि परमात्मा को उपाधि के संग से सुख दुःख मोह माया आदि कुछ नहीं भोगना पड़ता है । इससे यह भी सिद्ध होगया कि—उपाधिमुक्त जीवात्मा के साथ परमात्माका कुछ भेद नहीं है । जीवात्मा की उपाधिरहित अवस्था का ही दूसरा नाम परमात्मसायुज्य (मुक्ति) है ॥ ८ ॥

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोगार्थयुक्ता । अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ईशनीशौ—ईशानीशौ) ईश्वर और जीव (द्वौ) दोनों (ज्ञाज्ञौ) सर्वज्ञ और अज्ञ (अजौ) जन्मादि रहित (स्तः) हैं। (हि) क्योंकि—(एका) एक (अजा) प्रकृति (भोक्तृभोगार्थयुक्ता) भोक्ता, भोग और भोग्य से युक्त (अस्ति) है (च) और (आत्मा) आत्मा (अनन्तः) अनन्त (विश्वरूपः) सकल जगत्स्वरूप (हि) निश्चय (अकर्ता) कर्त्तापन से रहित (अस्ति) है (एतत्) इस (त्रयम्) तीन प्रकार के लक्षणों वाले (ब्रह्म)

ब्रह्म को (विन्दते) समझता है (तदा) तब (मुच्यते) मुक्त हो जाता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)आठवीं कारिका में यह दिखाया जा चुका है कि--परमेश्वर व्यक्त अव्यक्त कार्य कारण स्वरूप, विश्व का भरण करने वाला है और प्रकृति का वशीभूत जीवात्मा इन्द्रिय आदि और उनसे ग्रहण होनेवाले सकल पदार्थों के अधीन है। अब इन दोनों में और जो कुछ विलक्षणता है सो दिखाते हैं, कि--परमात्मा सकल विषयों का जानने वाला और जीवात्मा कुछ भी नहीं जानने वाला है, परमात्मा सर्व-शक्तिमान् है और जीवात्मा शक्ति रहित है, प्रकृति की शक्ति के विना,जीव नामका आत्मा की अपनी शक्ति कोई नहीं है, परन्तु यह दोनों ही अनादि हैं, क्योंकि जन्म मरण आदि सांसारिक धर्मों से रहित आत्मा अद्वितीया

सनातनी परमा प्रकृति के भुलावेमें पडकर जीव नाम (उपाधि) को धारण करता हुआ सांसारिक भोगों का कर्ता कहाने लगता है, उपाधि से ग्रस्त होने पर ही जीवात्मा नाम से कहा जाता है, नहीं तो उसका अपना वास्तविक जन्म आदि कुछ नहीं होता है, वह भी परमात्मा की समान ही अजन्मा है, उस की अपनी अलग कोई शक्ति नहीं है, परमा प्रकृति वा परमा माया की शक्ति से ही परिचालित होकर वह प्रकृति के विकार से उत्पन्न हुए भोगने योग्य पदार्थों का भोग करता है । जब वह माया वा प्रकृति का आश्रय लेता है तब ही उस का औपाधिक "जीव" नाम रक्खा जाता है, वह भोग के कर्त्ता रूप से शुभ अशुभ व्यापार को भोगता है, नहीं तो स्वयं वह

संसारधर्म का भागी कभी नहीं है। आत्मा प्रकृति के आश्रय से केवल जीवरूप मात्र को भोगता है, वास्तव में अकर्त्ता अर्थात् परमात्मा की समान संसारधर्म के संग से रहित अनन्त है और चराचर विश्व उसका ही स्वरूप हैं। प्रकृति के संग से जीव नाम को पाने पर सुख दुःख का भोगनेवाला सा प्रतीत होता है। जो पुरुष परमात्मा, प्रकृति का आश्रित जीवात्मा और प्रकृति, इन कठिन से जानने योग्य तीनों तत्त्वों के वास्तविक स्वरूप को समझ सकता है, वह ही परमब्रह्म ज्ञान का मुख्य अधिकारी है, वह ही सब प्रकार के बन्धन से छूटकर शाश्वती गति पाता है ॥ ९ ॥

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मना-वीशते देव एकः। तस्याभिध्यानाद्-

योजनात्तत्वभावाद्भूयश्चान्ते विश्व-
माया निवृत्तिः ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ—(इदम् जगत्) यह जगत् (क्षरम्) नाशवान् (प्रधानम्) परमात्मा (अमृताक्षरम्) अमृत और अविनाशी (हरः) अविद्याको दूर करनेवाला (अस्ति) है। (एकः) अद्वितीय (देवः) देव (क्षरात्मनौ-क्षरात्मानौ) प्रकृति और जीव को (ईशते) नियम में चलाता है (भूयः) बार २ (तस्य) तिसके (अभिध्यानात्) ध्यान करने से (योजनात) परमात्मा में विश्व का संयोग करने से (तत्त्वभावात्) मैं ब्रह्म हूँ ऐसा चिन्तवन करने से (अन्ते) सकल कर्मों-की समाप्ति होने पर (विश्वमायानिवृत्तिः) सकल माया की निवृत्ति (भवति) हो जाती है १०॥

भावार्थ—यह चराचर विश्व ब्रह्माण्ड क्षर अर्थात् एक दिन अवश्य नाश को प्राप्त होने वाला है, एक परमात्मा ही अमृत और अक्षर कहिये अविनाशी है वह जीव की अविद्या को हर लेता है इस कारण ही उस का नाम हर है वही सब से प्रधान और अद्वितीय पुरुष जीव को विनाश शील भोगके पदार्थों में रुचिवाला करता है अथवा उसके आश्रय के कारण से ही जीवात्मा नाशवान् भोगके पदार्थों का भोग कर सकता है। परमात्मा करके प्रेरित किया हुआ ही जीवात्मा विश्वको भोगता है, इस बातको श्रुति भी कहती है कि--"तस्माद्वि-राडजायत विराजो अधिपूरुषः।" अर्थात् उस निराकार परम पुरुष से विराट् अर्थात् ब्रह्माण्ड रूप देह उत्पन्न हुआ और उस विराट् देह के ऊपर अर्थात् विराट् शरीरका आश्रय करके

देह के अभिमानी पुरुष ने जन्म धारण किया सकल वेद वेदान्तों के द्वारा जानने में आने-वाला परमात्मा माया के द्वारा विराट् शरीर को रचकर उसमें जीवरूप से प्रवेश करताहुआ ब्रह्माण्ड का अभिमानी जीव होगया । उसने जब जीवरूप धारण किया उस समय देवता मनुष्य आदि अनेकों रूप धारण किये तथा पञ्चभूत और जीव शरीर आदि की सृष्टि हुई । ऐसे सर्वनियन्ता, सर्वकर्त्ता, सर्वप्रभु, सच्चि-दानंद, अद्वितीय परमात्मा का नामोच्चारण अर्थात् इसका वर्णन करनेवाले प्रणव का कीर्त्तन करने से और विश्व के सकल पदार्थों में उसकी व्याप्ति अर्थात् वह विश्व में व्यापक है, विश्व हरसमय उसमें संयोगसूत्र में दृढता से बँधाहुआ है और मैं उस विश्वव्यापी परमात्मा का एक अंश हूँ जगत के सब ही

पदार्थ उस के अंश हैं, ऐसे तत्त्वज्ञान आदि के द्वारा मनुष्य कठिन से कटनेवाली कर्मपाशों से मुक्ति पाते हुए; सुख दुःख मोह आदि सकल प्रकार के प्रपञ्चरूप माया से निवृत्त होकर कैवल्यपद को पाते हैं सदा आत्मा के साथ परमात्मा का अभेदभाव से चिन्तवन, विश्व में सर्वत्र उस की ही विभूति देखना तथा प्रणव का कीर्त्तन करने से आत्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है, आत्मतत्त्व के साक्षात्कारमात्र से ही जीव की मुक्ति होती है ॥ १० ॥

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।तस्याभिध्या- नात्तृतीयं देहभेदे, विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ- (देवम्) देव को

(ज्ञात्वा) जानकर (सर्वपाशापहानिः) पाश स्वरूप सब की अविद्याओं का नाश (भवति) होता है ।(क्लेशैः) क्लेशों के (क्षीणैः) क्षीण होने पर (जन्ममृत्युप्रहाणिः) जन्म मरण की निवृत्ति (भवति) होती है (तस्य) तिस के (अभि-ध्यानात्) चिन्तवन से (देहभेदे) देहपात होने पर (तृतीयम्) तीसरा (विश्वैश्वर्यम्) सकल ऐश्वर्य (प्राप्यते) प्राप्तहोता है (ततः) तदनन्तर (केवलः) सकल ऐश्वर्य में स्पर्शर-हित होकर(आप्तकामः) पूर्ण हुए हैं सकल मनो-रथ जिस के ऐसा (भवति) होता है ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-परम देवता परमेश्वर को जान जाने पर अर्थात् उस के साथ आत्माका तथा अन्यान्य पदार्थों का कुछ भेद नहीं है, सर्वत्र उस की विश्वव्यापिनी विभूति ही पूरीहुई है, वह सबों का जाननेवाला और सबों में स्थित

है, यह भावना हृदय में दृढ होजाने पर फांसी रूप अविद्या आदि का नाश हो जाता है। जन्म मरण आदि भी दूर होजाते हैं, अविद्या से छूटे हुए आत्मा को किसीप्रकार के क्लेश का अनुभव नहीं करना पडता है। इस अविद्यारूप पाश से मुक्त हुए विना और जन्म मरण आदि के दुर हुए विना उस परमेश्वर के चिन्तवन का तीसरा फल यह है कि—उस की भावना से जीव शरीरपात होने पर देवमार्ग से उस के समीप पहुँचता हुआ विश्व के सकल भोगने योग्य ऐश्वर्य का भोग करके उस में अभिलाषा रहित होताहुआ, सकल वासनाओं के परिपूर्ण होजाने के कारण वासनाओं से शून्य होकर पूर्णानन्द परात्पर परब्रह्म स्वरूप में स्थिति करता है। इस सब का स्पष्ट भाव यह है कि- अविद्या कहिये अज्ञान ही सकल दुःखों का

मूलकारण है, नित्य सनातन परमेश्वर सर्वदा समस्त पदार्थों में विराजमान हैं, सकल विश्व उनका ही अंश है, इत्यादि तत्त्व का जितना अधिक चिन्तवन कियाजायगा उतनाही ज्ञान फैलकर विश्व के समस्त पदार्थों में परमात्मा की सत्ता का अनुभव होगा। सर्वत्र उसकी ही विभूति है और जहां देखो तहां वही विद्यमान है. ऐसा ज्ञान होकर जब—सकल पदार्थों में उसकी ही छबि है वही सर्वस्वरूप है, ऐसा ज्ञान उत्पन्न होजाता है, उस समय एक वस्तु जाती रहै, या कोई और वस्तु मिलजाय तो इस लौटफेर से उस को कुछ शोक वा हर्ष नहीं होता है उस समय सर्वत्र समदृष्टि रखनेवाले जीव की अविद्या का नाश होजाने से उस अविद्या के कार्यस्वरूप जन्म मरण आदि भी दूर होजाते हैं,

जीव शरीरपात होने पर अविद्यारूप बडीभारी फांसी के कटजाने के कारण जीवभाव (जीवो-पाधि) को त्यागकर सकल ऐश्वर्यमय पर-मेश्वर के सालोक्य को पाता है और उस ब्रह्म-लोक के विचित्र धर्मों के कारण सकल भोगों में तृष्णारहित होकर शाश्वती मुक्ति-रूप ब्रह्मभाव को प्राप्त होजाता है । परमेश्वर का ध्यान करने से पहिले तो अतुल ऐश्वर्य से निर्विकार सुख पाता है, और फिर तत्त्व-ज्ञान के द्वारा उस सुख का परित्याग करके जीव विदेह होकर शाश्वती मुक्ति पाता है ॥ १ ॥

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित् । भोक्ता भोग्यं प्रेरितारञ्च मत्त्वा, सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ--(भोक्ता) भोगनेवाला (भोग्यम्) भोगने योग्य (च) और (प्रेरितारम्) प्रेरणा करनेवाला (मत्त्वा) मानकर (एतत्) यह (आत्मसंस्थम्) आत्म गत ब्रह्म (नित्यम्) नित्य (एव) ही (ज्ञेयम्) जाननेयोग्य है (हि) क्योंकि (अतः परम्) इस से ऊपर (किञ्चित्) कुछ (वेदितव्यम्) जाननेयोग्य (न) नहीं (अस्ति) है (एतत्) यह (प्रोक्तम्) कहा हुआ (त्रिविधम्) तीन प्रकार का (सर्वम्) सब (ब्रह्म) ब्रह्म है ॥ १२ ॥

(भावार्थ) भोग करनेवाला जीव, भोगने योग्य पदार्थ और सब का नियन्ता परमेश्वर इन तीनों का अभिन्नभाव से चिन्तवन करके अर्थात् सर्वान्तर्यामी परमेश्वर के साथ जीव और भोग्य पदार्थों का कुछ भेद न मानकर

निरन्तर भीतरी यत्न के साथ उस आत्मस्थित परब्रह्म का ध्यान करना चाहिये, वह हरसमय आत्मस्वरूपमें स्थितरहताहै, आत्मदृष्टि होजाने पर उस को जान लेने से अन्य किसी का आश्रय नहीं करना पडता है, आत्म तत्त्वका ज्ञान होजाने पर परम पुरुषार्थ की सिद्धि होती है, इसीकारण अपना हित चाहनेवालों को सर्वदा उस आत्मस्थित परमपुरुष के साथ आत्मा और विश्व के सकल पदार्थों का अभिन्नभाव से चिन्तवन करके सकल जगत् को ब्रह्ममय जानना चाहिये क्योंकि इसके सिवाय जीव को और कुछ जाननेंयोग्य वस्तु नहीं है, जाने और समझने की वस्तु एक वही है, जबतक उस को इस भाव से नहीं देखा जायगा तब तक शान्ति वा मुक्ति की कुछ आशा नहीं है । इस का स्पष्ट

तात्पर्य यह है कि--ध्यान धारणा आदि के द्वारा आत्मज्ञान होने से ही उस का साक्षात्कार होता है। सकल विश्व उस की ही परछाहीं है, सकल प्राणी उस की ही बडी-भारी शक्ति के वश में होकर चलते हैं, एक वह ही सत् है; वह सर्वदा सकल प्राणियों में समभाव से विराजमान है, उस के सिवाय और कुछ भी जानने योग्य नहीं है, ऐसी प्रतीति केवल आत्मज्ञान होने से ही उत्पन्न होती है, इस कारण जैसे होसके तैसे उद्योग करके आत्मज्ञान की प्राप्ति करना मोक्ष की इच्छा रखने वाले का सब से बढकर कर्त्तव्य है, जो पुरुष अपने में आत्मा के न होनेका अनुभव नहीं कर सकता है, उस का बाहर ब्रह्म की खोज करना विडम्बनामात्र है। आत्मसत्ता का अनुभव न होने के कारण उस का दुःख दूर नहीं होसकता।

ब्रह्मपुराण में लिखा है-"तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां मुक्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।" जो विवेकी पुरुष उसको आत्मा में स्थित देखते हैं उन को ही नित्य शान्ति मिलती है, औरों को नहीं ॥

आत्मा ही जीव का परम तीर्थ है, जिन्हों ने आत्मतीर्थ में गोता लगालिया उन को और तीर्थों में जाने की आवश्यकता नहीं, आत्मा ही जीव का परम ज्ञेय है, जिन्हों ने आत्मा को जानलिया उन को जानने के लिये कुछ भी शेष नहीं रहा, आत्मज्ञान के विना चाहे कोई क्रिया करो वह अलोनें भोजन की समान ठीक नहीं, पाण्डवों को अध्यात्मोपदेश देते समय महाभारत में कहा है-"आत्मा नदी संयम पूर्णतीर्था सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः । तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्धयति

चान्तरात्मा ॥"अर्थात् आत्मा ही बडीभारी नदी है, संयम उस का पवित्र तीर्थ है, सत्य उस का जल है, शील उस का किनारा है, और दया उस की तरंगें हैं, हे पाण्डुपुत्र! तुम उस पवित्र तीर्थ में शरीर और मन को स्नान कराओ, उस पवित्र तीर्थ में स्नान करके अपने को शुद्ध करो, केवल जल से अन्तरात्मा शुद्ध नहीं हो सकता आत्मा के सिवाय और कुछ ध्यान करने योग्य नहीं है, आत्माही आत्मपद को पाने का सब से बढ़कर कारण है, आत्मज्ञान ही सब शान्तियों के प्रवाह का मूल सोता है, यही बात श्रुति में कहीहै–"तदानीमोमित्येतेनाक्षरेण परमपुरुषमभिध्यायीत, ओमित्यात्मानं युञ्जीत, ओमित्यात्मानं ध्यायीत, तदेतत्यदनीयमस्य सर्वस्य यदयमात्मा इति"। उस आत्मज्ञान के समय ॐ इस प्रणव अक्षर के द्वारा

परम पुरुष का ध्यान करै, ॐ इस प्रणव अक्ष
के द्वारा आत्मा को उस के साथ युक्त करै, ॐ
इस प्रणव के द्वारा आत्मा का ध्यान करै, व
एकमात्र परब्रह्मही सबका लक्ष्य और पाने योग्य
है,क्योंकि वह आत्मस्वरूप से सर्वत्र विराजमा
है । श्रेष्ठ अधिकारियों के लिये आत्मज्ञान
आत्मध्यान, आत्मविश्वास और आत
रति आदि ही मुक्तिपद को पाने का पर
साधन है ॥ १२ ॥

वह्नेर्यथा योनिगतस्यमूर्तिर्न दृश्यते
नैव च लिङ्गनाशः । स भूय एवेन्ध-
नयोनिगृह्यस्तदोभयं वै प्रणवेन
देहे ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ--(यथा) जैसे (योनि
गतस्य, अपने उत्पत्ति स्थान काष्ठ में स्थि

(वह्नेः) अग्नि की (मूर्त्तिः) मूर्त्ति (न) नहीं (दृश्यते) दीखती है (लिङ्गनाशः) सूक्ष्म शरीर का नाश (च) भी (न) नहीं (एव) ही (भवति) होता है (सः) वह (एव) ही (भवति) होता है (तत्) तिस (उभयं वा—उभयम् इव दोनोंकी समान (देहे) देह में (प्रणवेन) प्रणवके द्वारा (आत्मा) आत्मा (गृहीतव्यः) ग्रहण करना चाहिये ॥ १३ ॥

(भावार्थ)—आत्माके अन्वेषण पूर्वक परब्रह्म के ध्यान करने का प्रधान अङ्ग प्रणव ही है। अतः प्रणव के स्वरूप का वर्णन करते हैं कि—अरणि कहिये अग्नि को उत्पन्न करने वाले काठ में स्थित अग्नि की मूर्ति दीख नहीं सकती और उस अग्नि का लिंग शरीर (सूक्ष्म देह) इस काठ में सर्वदा ही रहता है, जिस समय इस काठ के टुकड़े के साथ दूसरे एक

काठ के टुकडे को घिसकर मथा जाता है त
जैसे उस काठ में से अग्नि दीखने लगता है
तैसेही देहरूप काठ के साथ जब प्रणव रू
दूसरे काठ को रगड कर मथन किया जाता
तब सूक्ष्म अवस्था में देहमें अदृश्य भावसे वि
मान आत्मस्वरूप अग्नि का दर्शन होता
अर्थात् प्रणव साधन कैवल्य से आत्मत
जिसका दूसरा नाम ब्रह्मज्ञान है वह ज्ञात ह
जाता है इस कारण आत्मतत्त्व के पिपा
मोक्ष के अभिलाषियों को हर समय प्रणव क
ध्यान करना चाहिये क्योंकि प्रणव की साध
ना के विना आत्मज्ञान पूर्वक ब्रह्मज्ञान की आ
शही नहीं है ॥ १३ ॥

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवञ्चोत्तरार
णिम् । ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं
पश्येन्निगूढवत् ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ--(उपासकः) उपासक (स्वदेहम्) अपने शरीर को (अरणिम्) अग्नि को उत्पन्न करने वाला नीचे का काठ (च) और (प्रणवम्) ॐकार को (उत्तरारणिम्) ऊपर का काठ (कृत्वा) करके (ध्यान निर्मथनाभ्यासात्) ब्रह्मचिन्तवनरूप ध्यान के निर्मंथन कहिये वारंवार करना तिस के अभ्यासे (निगूढवत्) काष्ठ में गुप्तरूप से स्थित अग्नि की समान (देवम्) देव को (पश्येत्) देखे ॥ १४ ॥

(भावार्थ) जो अपने शरीर को रगड़ने पर अग्नि उत्पन्न करदेनेवाले नीचे के काठकी समान करके निरन्तर ब्रह्म का ध्यानरूप रगड़ा लगावै अर्थात् प्रणव का जप करताहुवा निरन्तर ब्रह्म के ध्यान में निमग्न रहै वह शीघ्र ही अपने में गुप्त भाव से स्थित परब्रह्म का दर्शन

पाता है। काठ से काठ को घिसने से जैसे उसमें स्थित गुप्त अग्नि बाहर निकलकर प्रकट होजाता है तैसे ही देह के साथ अर्थात् देह शब्द के लक्ष्य अधरोष्ठ के साथ प्रणव का मन्थन (अधर पर प्रणव का उच्चारण) करनेसे आत्मस्वरूप में विराजमान परज्योतिस्वरूप परमदेव का दर्शन होता है अर्थात् परब्रह्म अपने में ही गुप्तभाव से स्थित है और निरन्तर प्रणवके कीर्त्तन से उसका साक्षात्कार होता है॥

तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिरापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः। एवमात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति॥ १५॥

अन्वय और पदार्थ-(तिलेषु) तिलों में (तैलम्) तैल (दधिनि) दधि में

(सर्पिः) घी (स्रोतःसु) स्रोतों में (आपः) जल (च) और (अरणीषु) अरणि काठों में (अग्निः इव) आग जैसे (एवम्) ऐसेही (यः) जो) एनम्) इसको (अनुपश्यति) देखना चाहता है (असौ) यह (सत्येन) सत्य करके (तपसा) तप करके (आत्मनि) अपने शरीर में ही (गृह्यते) पायाजाता है १५॥

(भावार्थ) जैसे तिलों में का तेल कभी नहीं दीखता और कोल्हू में पेरे विना वह बाहर नहीं निकलता, दही में का घी जैसे निरन्तर गुप्तभाव से दही में ही स्थित रहता है, मथे विना उस का दर्शन नहीं होता, पृथिवी के नीचे सोतों में का जल निरन्तर अदृश्य रहने पर भी भूमि को खोदने पर मिलजाता है, और अरणि नामक काठ में

छुपीहुई अग्नि जैसे दीखती ही नहीं, परन्तु दूसरी अरणि के साथ घिसते ही वह गुप्त अग्नि दृष्टि के सामने आजाती है, तैसे ही जो उपासक सकल प्राणियों के हितकी इच्छा करता हुआ सत्य के द्वारा तथा इंद्रियें और मन की एकाग्रताके द्वारा आत्मा का निरन्तर अन्वेषण करता है वह थोडे ही समय में इस साधना के बल से आत्मा में नियतरूप से निगूढ परब्रह्म का दर्शन करसकता है, पेरने मथने आदि के विना जैसे तिल दही आदि में से तेल घी आदि नहीं निकल सकता तैसे ही सत्य तप आदिरूप आत्मसमाधि के विना आत्मस्थित परब्रह्म का साक्षात्कार होना असम्भव है । आत्मा का अन्वेषण, आत्म विचार, आत्मचिंता, आत्मजिज्ञासा, और आत्मरति आदि ही परब्रह्म के निरवच्छिन्न

सुखरूपी मन्दिर में प्रवेश करने का सोपान (सीढी) स्वरूप है, आत्मान्वेषण आदिरूप अवलम्बन के विना इस दुरारोह महल पर चढना असाध्य है अतएव ब्रह्मजिज्ञासु को सबसे पहिले सब प्रकार से ब्रह्मदृष्टि करना चाहिये ॥ १५ ॥

सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवा-र्पितम् । आत्मविद्यातपोमूलं तद्ब्रह्मो-पनिषत्परम् ॥ तद्ब्रह्मोपनिषत्परम्॥१६॥

अन्वय और पदार्थ--(यः) जो (क्षीरे) दूधमें (अर्पितम्) स्थित (सर्पिः इव) घी की समान (सर्वव्यापिनम्) सर्व व्यापी (आत्मा-नम्)आत्माको (अनुपश्यति) दर्शन करनेका यत्न करता है (तेन) तिस करके (आत्म-विद्यातपोमूलम्) आत्मज्ञान और मन

इन्द्रियादि को वश में करने का प्रधान कारण (तत्) वह (उपनिषत्) उपनिषदों में वर्णन किया हुवा (परं ब्रह्म) परं ब्रह्म (गृह्यते) ग्रहण कियाजाता है ॥ १६ ॥

(भावार्थ) दूध में का घी ही जैसे दूध का सार है तैसे ही आत्मा सब पदार्थों में सारभाव से व्याप्त है विश्व के सब ही पदार्थों पर उस का अधिकार है, जगत् में आत्मविहीन कोई वस्तु है ही नहीं। आत्मा ब्रह्म से पृथक् नहीं है सर्व व्यापी सर्व सारभूत ब्रह्म से आत्मा का कुछ भेद नहीं है आत्मविद्या कहिये अविद्या का नाश और मन तथा इंद्रियादि को जीतना उस आत्मरूपी परब्रह्म के अधीन है, वही साधना के बल से उपासक के हृदय में प्रकाशित होकर इन सब का संहार करता है, उस परमात्मा का चिन्तवन और मनन आदि

करने से शीघ्र ही अविद्या आदि का नाश हो-जाता है, वही ज्ञानयोग देने के लिये साधुओं को सत्कर्म करने की रुचि देता है, सब उपनिषद् इस की ही महिमा का गान करते हैं, वह सब पदार्थों का सब ज्ञानों का सब शास्त्रों का और सब धर्मों का सार है, उस के सिवाय जगत् में और कुछ भी जानने योग्य नहीं है (अध्याय की समाप्ति के लिये श्रुति के अन्तिम वाक्यों को दो वार कहा है) ॥ १६ ॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषद्का प्रथम अध्याय समाप्त।

द्वितीय अध्याय ।

(हरिः ओं)

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः । अग्नि ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सविता) सूर्य (तत्त्वाय) तत्त्वज्ञान होने के अर्थ (प्रथमम्) पहि(मनः) मनको (धियः) इन्द्रियों (युञ्जानः) युक्त करता हुआ (अग्नेः अग्नि के (ज्योतिः) तेज को (निचाय्य इकट्ठा करके (पृथिव्याः अधि) पृथिवी प (आभरत्) लाता हुआ ॥ १ ॥

(भावार्थ) पहिले ध्यान परमात्मदर्श

करानेवाला है यह बात दिखाई गई, अब अ

ध्यानकी रीति कहते हैं कि—ध्यान का प्रारम्भ
करने के प्रथम समय में संयतचित्त और बाहरी
व्यापार से निर्लिप्त होकर सूर्यदेव की उपासना
करने के लिये इस प्रकार प्रार्थना करै कि—पर-
तेजस्वी मार्त्तण्डदेव मुझको तत्त्वज्ञान प्राप्त
होने के लिये ध्यानारम्भ के प्रथम काल से ही
मेरे चित्त को और बाहरी विषयों के ज्ञान को
वा इंद्रियों को परमात्मा में संयुक्त करके और
परम दीप्तिमान् अग्नि की ज्योति को इकट्ठी
करके मेरे शरीर में स्थापित करैं, वा लावैं
अर्थात् तेजों के खजाने सविता देव अग्नि
आदि अन्य अनुग्रह कर्त्ता देवताओं की विश्व-
प्रकाशिका शक्ति को मुझ में प्रकाशित करैं,
इस की दूसरी व्याख्या यह है कि—ध्यान के
प्रारम्भ काल में परमात्मतत्त्व में मन लगाकर
योगमार्ग के अवश्य विघ्नरूप बाहरी विषयों

के ज्ञान से चित्त को रोककर और एकान्त
सावधान होकर परमात्मा में मन लगाता हु
तेजस्वी सविता देवता उस ज्योति परमात्मा
तेजोमय स्वरूप अग्नि की ओर को दृष्टि क
इस सकल ब्रह्माण्ड को तेज के प्रकाश से द
काते हैं। इन्द्र चन्द्रादि अन्य अनुग्रह क
देवगण उस परात्पर परमात्मा के अनुग्रह
बल से ही अपने प्रभुत्व का प्रकाश करस
हैं। इस जगत् में जो कुछ आश्चर्य देखने
आता है, इस असीम ब्रह्माण्ड के व
स्थल पर जो कुछ विभूतिमय पदा
देखते हैं, वह सबही इस परम पुरुष की प
विभूति की अद्भुत महिमा का फल है ॥ १

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितु
सवे सुवर्गेयाय शक्त्या ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ— (वयम्) हम (युक्तेन) परमात्मा में लगे हुए (मनसा) मन करके (सवितुः) सूर्य (देवस्य) देव की (सवे) आज्ञा में (सुवर्गेयाय-स्वर्गाय) स्वर्ग पाने के निमित्त अथवा स्वर्ग प्राप्ति के हेतुभूत ध्यान में (शक्त्या) यथाशक्ति (प्रयतामहे) प्रयत्न करें ॥ २ ॥

(भावार्थ) हम परमात्मा में संयुक्त और आत्मदृष्टि के लिये परमसाधन अन्तःकरण के साथ परमदेव सविता की आज्ञा में रहकर परमार्थलाभ के लिये अथवा स्वर्गप्राप्ति के लिये यथाशक्ति उद्योग करैं ॥ यह अर्थ भी है— हम जिस समय परमात्मतत्त्व की प्राप्ति के लिये परमात्मा में मन लगातेहुए देह और इन्द्रियों को दृढ करेंगे उस समय परमार्थ प्राप्ति के हेतुभूत परमात्मचिन्तवन में यथाशक्ति यत्न

करेंगे, ऐसे दृढ़निश्चय के साथ आत्मचिन्तव और आत्मदृष्टि करसकने पर पुरुष अनुप आनन्द पाता है ॥ २ ॥

युक्त्वाय मनसा देवान् सुवर्यतोधिया दिवम् । बृहज्ज्योतिः करिष्यतः स विता प्रसुवाति तान् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुवः स्वर्ग (यतः) जानेवाले (धिया) सम्यक्दर्श करके (दिवम्) एकमात्र चैतन्यस्वरूप (बृह ब्रह्म को (ज्योतिः) प्रकाशित (करिष्यतः करनेवाले (देवान्) इन्द्रियों को (मनसा) म करके (युक्त्वाय) युक्त करके (सविता सूर्यदेव (तान्) उन को (प्रसुवातु) करने आज्ञा दें ॥ ३ ॥

(भावार्थ) स्वर्ग अर्थात् पूर्णानन्द ब्रह्म की ओर को जाने के निमित्त उद्यम और सम्यक् प्रकार से तत्त्वदर्शन के द्वारा अनन्त ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म को प्रकाशित करने में समर्थ इन्द्रियों को मनसे संयुक्त करके अर्थात् बाहरी और भीतरी तत्त्वों को एकसूत्र में बांधकर, जिस से कि इन्द्रियें निरन्तर तैसा काम (ब्रह्म का ध्यान, मनन आदि) करसकैं, योग के अधिष्ठातृदेव सविता, उन इन्द्रियों को तैसा करने की आज्ञा दें ॥ तात्पर्य यह है कि—ध्यान के आरम्भकाल में सूर्यदेव के समीप फिर ऐसी प्रार्थना के मिष से आत्मदृष्टि, आत्मानुसन्धान और आत्मत्याग का अभ्यास करना होगा कि हमारी सब इन्द्रियें अपने २ विषयों से हटकर सदा परमात्मतत्त्व की खोज में लगैं, अर्थात् हमारी इन्द्रियों के जो नित्य ग्रहण

करने के असत्य विषय हैं उन सबसे हटक
वह अमृतस्वरूप सत्य विषय को ग्रहण करने
में समर्थ हों, हम इधर उधर जोकुछ देखते हैं
सुनते हैं और विचारते हैं वह सब अनित्य औ
परिणाम में अशान्ति देनेवाला है । इस संसा
में वास्तविक देखने, सुनने और विचारने योग्य
वस्तु एक ही है, वह सत्य, दर्शनीय; सुखस्व
रूप और परमनिर्मल है, अतएव हमारे ने
मिथ्याभूत बाहरीरूप लावण्य में मुग्ध न होक
उस सदानन्द सदाकाल रहनेवाले रूप क
लालसा में लगें, हमारे कान थोडेसे समयमा
को अच्छे लगने वाले पार्थिव श्रवण के विष
में आसक्त न होकर उस श्रवणसुखदायक परब्र
की विभूति को प्रकाशित करनेवाले ओंका
के गान में आसक्त हों । इसीप्रकार सब इन्द्रि
सब प्रकार के बाहरी विषयों से हटकर आन्त

रिक तत्त्व को अपने २ ज्ञान का विषय करैं इस प्रकार उपासना से पहिले चिन्तवन करके बाहरी प्रवृत्ति को अन्तर्मुखी करसकने पर उपासक के सामने अतिकठिन और दुरारोहभी ध्यान का मार्ग अतिसुगम समतल नगरवीथी की समान प्रतीत होनेलगता है ॥ ३ ॥

युञ्जते मन उतयुञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इत् मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ये) जो (विप्राः) विद्वान् (मनः) मन को (युञ्जते) परमात्मा में संयुक्त करते हैं (उत) और (धियः) इन्द्रियों को (युञ्जते) परमात्मा में संयुक्त करते हैं, (विप्रस्य) (सर्वव्यापी) (बृहतः)

महान् (विपश्चितः) सर्वज्ञ (सवितुः) सविता (देवस्य) देव की (मही) परमप्रशंसनीय (परिष्टुतिः) उत्तम स्तुति (विधेया) करनी चाहिये (वयुनावित्) सब का साक्षी (एकः) अद्वितीय (इत् एव) ही (होत्राणि) हवनादि क्रियाओं को (विदधे) विधान करताहुआ ॥

(भावार्थ)-जो विद्वान् मन और सकल इन्द्रियों को बाहरी विषयों से खैंचकर परमात्मा में लगासकते हैं, उनको चाहिये कि सर्वव्यापी, महान् सूर्यदेव की परमप्रशंसनीय स्तुति अवश्य करैं, क्योंकि परम प्रज्ञावान् सविता देवता ही जगत के व्यापारों के एकमात्र साक्षी हैं वह सकल कर्म्मों को जानते हैं और वह ही हवन आदि सकल क्रियाओं का विधान करते हैं पञ्च ज्ञानेन्द्रियों सहित मन

को सावधान करके ब्रह्मस्वरूप सूर्यदेव की परमदीप्ति का ध्यान करते २ ही, इस विश्व-प्रकाशक पुनरावृत्तिरूप परमगाढ अन्धकार के विनाशक परमपुरुष की परमज्योति को हृदयङ्गम किया जासकता है । अतएव योग-जीवन विप्रों के निमित्त सूर्यदेवकी उपासना ही कैवल्यप्राप्ति का मूल कारण है ॥ ४ ॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोका यन्ति पथ्येव सूरेः । शृण्वन्ति विश्वे अमृतस्य पुत्राः आये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वाम्) तुम्हारे (पूर्व्यम्) पुरातन (ब्रह्म) ब्रह्म को (नमोभिः) नमस्कारों से (युजे) समाहित करता हूँ ।

(श्लोकाः) स्तुतियोग्य परमपुरुष (सूरेः) साधु के (पथि) मार्गमें (एव) ही (वि-यंति वि-आयातु) विशेषरूप से आवै (अमृतस्य) ब्रह्म के (विश्वे) समस्त (पुत्राः) पुत्र (ये) जो (दिव्यानि) दिव्य (धामानि) धामों को (अधितस्थुः) अधिष्ठित करके रहे (शृण्वन्ति शृण्वन्तु) सुनो ॥ ५ ॥

(भावार्थ)—हे अमृत के पुत्रो ! मैं तुम्हारे निरन्तर ब्रह्म को चित्त प्रणिधान,आदि के द्वारा समाधान करता हूँ वह प्रणिधान करने योग्य परम पुरुष मेरे हृदयमें प्रकाशित हो, मेरे हृदयरूप सन्मार्ग में विचरो, हे दिव्यलोक-वासी अमृत के पुत्रो ! तुम मेरी प्रार्थना को सुनो । इस का यह अर्थ भी है । कि इन्द्रियें और उनके ऊपर अनुग्रह करनेवाले देवताओं

करके अन्तः करणमें प्रकाशित अनादि अनन्त ब्रह्म का मैं सर्वान्तः करण के साथ प्रणिधान करता हूँ। मैं जो कुछ कहता हूँ अर्थात् मेरे कलुषित कण्ठसे जो कुछ बाहर निकलैं वह सब वाक्य ब्रह्मविषय के ही हों, ब्रह्म के गुणों का कीर्त्तन करने के सिवाय मैं और कुछ बोलूँ ही नहीं, मेरी रसना अन्य सब ओर से हटकर सर्वदा परमात्मा की कथा रूप अमृत को पीने में लगी रहे। हे अमरधाम के निवासी अमृतसन्तानों! मुझे ऐसे भाव का अवलम्बन करने की सामर्थ्य देने का अनुग्रह करो॥ ५॥

अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायुर्यत्राधिरुध्यते। सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र सञ्जायते मनः॥ ६॥

अन्वय और पदार्थ--(यत्र) जहां अग्नि (अभिमथ्यते) अरणियों को रगडकर उत्पन्न कियाजाता है (यत्र) जहां (वायुः) वायु (अधिरुध्यते) अग्नि कुण्ड में रोका जाता है (यत्र) जहां (सोमः) सोमरस (अति- रिच्यते) अधिक होता है (तत्र) तहां (मनः प्रवृत्ति (सञ्जायते) होती है ॥ ६ ॥

(भावार्थ) पहिले श्लोकों में सूर्यात्मक तेजो मय ब्रह्म की प्रार्थना का वर्णन कियागया जो फिर प्रार्थना करके, चित्त की कामनाओं के वशीभूत होने के कारण भोग के लिये योगमें प्रवृत्त होते हैं वह उस २ भोग को पाजाते हैं इस लिये तहां दो अरणियों के घिसनेसे अग्नि उत्पन्न होती है अर्थात् जिस यज्ञ में अग्नि के द्वारा मथन भरण आदिका कार्य सिद्ध हो- ता है, उस यज्ञ में अग्नि को प्रज्वलित करने

के लिये यज्ञकुण्ड में और रेचक आदि क्रिया के द्वारा देह में वायु को रोका जाता है, उस यज्ञ में चन्द्रमा स्वयं यज्ञ के कार्य को पूरा करते हैं । अथवा जिस यज्ञ में सोमरस का अभाव नहीं ऐसे सर्व सामग्रीयुक्त अग्निष्टो-मादि वेदविहित स्वर्गसाधक यज्ञादि कर्म में ज्ञान योग के अनधिकारी पुरुष की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, तदनन्तर क्रम से कर्मानुष्ठान के कारण ज्ञानरूपी नौका का आश्रय प्राप्त होकर दुस्तर कर्मसागर को तरतेहुए, जिसका पहिले कभी अनुभव नहीं किया ऐसे आनन्द रस में निमग्न होजाते हैं, और उन का कर्म बन्धन कटजाता है, ज्ञान योग में जिसका गम्य न हो उसके लिये कर्मानुष्ठान ही ज्ञान पाने का सब से श्रेष्ठ उपाय है॥

इस कारिका का अर्थ दूसरे प्रकार से भी होसकता है जिस में ध्यानरूपी मथन से परमात्मा का दर्शन होता है, प्राणायामादि के द्वारा रुका हुआ वायु अव्यक्त शब्द करता है और सोम अनेकों जन्मों में सेवा करने के कारण बढता है, वह यज्ञ, दान, तप, प्राणायाम, समाधि आदि से शुद्ध हुआ अंतःकरण पूर्णानन्द अद्वतीय ब्रह्माकार होजाता है ॥ ६ ॥

सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम् ।
तत्र योनिं कृण्वसे न हि ते पूर्वमाक्षिपत् ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(साधकः) साधक (सवित्रा--सवितुः) सूर्य के (प्रसवेन, अनुग्रह से (पूर्व्यम्) सनातन (ब्रह्म) ब्रह्म को (जुषेत) सेवन कर (तत्र) उस ब्रह्म में (योनिम्

समाधिरूप आश्रय को (कृण्वसे--कुरुष्व) कर (एवं कुर्वतः) ऐसा करते हुए (ते) तेरा (पूर्वम्) पहिले आचरण कियाहुआ कर्म (नहि) नहीं (अक्षिपत्) चित्तमें विक्षेप करेगा ॥ ७ ॥

(भावार्थ) हे साधक ! पहिले उपदेशों में जो सूर्यात्मक ब्रह्म की उपासना का वर्णन हुआ है उसके अनुसार सूर्य देव के अनुग्रह से सनातन ब्रह्म में अनुराग वाला होकर उसके ध्यान आदि में मन को लगा;ऐसा करने से तेरा पहिले किया हुआ क्रियाकलाप तेरे चित्त में अशांति को न बढा सकेगा ऐसा करने से स्मृतियों में कहीहुई या वेद में विधान कीहुई क्रिया में बन्धन नहीं होगा ! सूर्यात्मक,तेजोमय ब्रह्म के चिन्तवन से तेरी ज्ञानाग्नि प्रज्व-

लित होकर तेरा सब कर्मकलाप भस्मीभूत हो जायगा ॥ ७ ॥

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य । ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ--(विद्वान्) विवेकी (त्रिरुन्नतम्) तीन हैं ऊंचे जिस के ऐसे (शरीरम्) शरीर को (समम्) समान (स्थाप्य) स्थापन करके (इंद्रियाणि) इंद्रियों को (मनसा) मन करके(हृदि हृदय में (सन्निवेश्य) सम्यक् प्रकार से प्रविष्ट करके (ब्रह्मोडुपेन) ब्रह्म प्राप्ति के मुख्य हेतु ॐ कार रूप डोंगे के द्वारा (सर्वाणि) सब (भयावहानि)भयदायक (स्रोतांसि) सोतों को (प्रतरेत) पार होय॥

(भावार्थ) ब्रह्मज्ञानी महात्मा वक्षः स्थल, ग्रीवा और मस्तक इन तीन स्थानों पर ऊंचे हुए शरीर को सम तोल आसन पर स्थापन करके और इंद्रियों को मनके द्वारा हृदय में भली प्रकार प्रवेश कराकर ब्रह्मप्राप्ति के उपायस्वरूप ॐकार स्वरूप डोंगी की सहायता से इस भयानक संसाररूपी सागर के पार हो-जाते हैं ॥ ८ ॥

प्राणान् प्रपीड्येह स युक्तचेष्टः
क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत ।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान् मनो
धारयेताप्रमत्तः ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(युक्तचेष्टः) शास्त्रानुसार है कर्त्तव्य जिसका ऐसा (सः) वह साधक (इह) इस विषय में (प्राणान्)

प्राणों को (प्रपीड्य) संयत करके (प्राणे) प्राण वायु वा मन के (क्षीणे) शक्ति हीन होने पर (नासिकया) नासिका करके (उच्छ्वसीत) श्वास लेय (विद्वान्) विवेकी (अप्रमत्तः (प्रणिहित चित्त होकर (दुष्टाश्वयुक्तम्) उच्छृं-खल घोडों से युक्त (वाहम्--इव) रथ की समान (एनम्) इस (मनः) मनको (धार-येत) धारण करै ॥ ९ ॥

(भावार्थ) इसके अनन्तर मन की स्थिरता का प्रधान उपाय और ब्रह्मप्राप्ति के सर्वोत्तम आदिकारण प्राणायाम की विधि कहते हैं कि--साधक इस प्राणायाम क्रिया के समय प्राणवायु को रोकता हुआ अङ्ग प्रत्यङ्ग आदि की हालत आदि सकल क्रियाओं को रोककर अर्थात् जितने शरीर के व्यापार हैं सब को रोककर, मन के शक्तिहीन होने पर, नासिका

के छिद्रों से श्वास खैंचने छोडने की क्रिया करै मुख की ओर को श्वास खैंचने या छोडने की क्रिया न करै । जैसे सारथि खूब चित्त लगाकर उद्धत घोडे जिसमें जुते हों ऐसे रथ की बाग डोरों को पकडता है; तैसे ही विचारवान् पुरुष भी अत्यन्त स्थिर चित्त होकर बहुत कुछ सावधानी के साथ इस चंचल मन को धारण करै अर्थात् रोके । जब मनके ऊपर प्रभुता होजाय तबही दुर्गम साधनमार्ग अति सुगम होजाता है । मन ही सकल व्यापारों की प्रवृत्ति और निवृत्ति का कारण है । जो मनो-राज्य के राजा हैं उन को मोक्षरूपी रत्न अधिक दुर्लभ नहीं है ॥ ९ ॥

समे शुचौ शर्करा-वह्नि-वालुका-
विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः ।

मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने, गुहा-
निवाताश्रयणे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(समे) समतल (शुचौ) पवित्र (शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते) छोटे २ पत्थर अग्नि और पत्थर के चूरेसे रहित (शब्दजलाश्रयादिभिः) शब्द जल और आश्रय करके रहित अथवा मधुर शब्द, स्वच्छ जल और कुञ्जों के आश्रय करकै (मनोऽनु-कूले) मन के अनुकूल (न तु) नहीं (चक्षु-पीड़ने) चक्षुको पीडा देनेवाले (गुहानिवाता-श्रयणे) गुफा मेके वायु रहित के स्थान में (प्रयो-जयेत्) परमात्मा में चित्त को लगावे ॥ १०॥

(भावार्थ) समतल, परमपवित्र और पत्थर के टुकड़े, अग्नि तथा पत्थर का चूरा आदि रेते से रहित, प्रकृति की प्यारी संतान पक्षी

आदि की मधुर कुहुक, स्वच्छ जलवाली नदियें या स्नेह को वर्षानेवाले झरने और पत्तों से रहित आश्रय, अथवा प्रकृति के बनाए लता कुञ्ज आदि के द्वारा चित्त को शांतिदेनेवालीं, देखने में सुन्दर गुफायें वा चित्त को विक्षेप देनेवाले वायु के प्रवाह से रहित स्थान में, साधक चित्त को परमात्मा में लगावे अर्थात् ऊपर कहेहुए रमणीय स्थान में एकाग्रचित्त होकर सिद्धि की चाहनावाले विद्वान् को अनन्य मन होकर ब्रह्म के चिन्तवन में तत्पर होना चाहिये ॥ १० ॥

नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशिनाम् । एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(योगे) योग करने के समय (नीहारधूमार्कानिलानलानाम्) कुहर, धुआँ, सूर्य, वायु, और अग्नि के (खद्योत-विद्युत्-स्फटिकशशिनाम्) पटवीजना, बिल्लौर और चन्द्रमा के (एतानि) यह (रूपाणि) रूप (ब्रह्मणि) ब्रह्म के विषय में (अभिव्यक्तिकराणि) ब्रह्मसाक्षात्कार के पूर्वाभास रूप (पुरःसराणि) प्रथम चिह्न (आविर्भवन्ति) प्रकट होते हैं ॥ ११ ॥

(भावार्थ) योगक्रिया का अनुष्ठान करते २ जब परमयोग सिद्धि का प्रारम्भ होने लगता है तब चित्त की वृत्ति रात्रि के कुहरे की समान निर्मल और अतिस्नेहमय होती है, तदनन्तर धुएँ के पुञ्ज की आभा की समान सकल विश्व धुएँ से भराहुआ सा प्रतीत होनेलगता है; और उस के अनन्तर सूर्य के प्रतिबिम्ब की समान

तेज का पुञ्ज दीखनेलगता है, क्रम २ से बहुत ही गरम वायु के प्रवाह का अनुभव होनेलगता है, ऐसा मालूम होता है कि--जगत् में ज्वालामय वायु चलरहा है । किसी समय आकाश मण्डल खद्योतों से भरा हुआसा, कभी विजली की दमकवालासा प्रतीत होता है, और फिर कभी स्वच्छ स्फटिक की प्रभा से जगत् मण्डल भरा हुआ सा प्रतीत होताहै, कभी सन्मुख पूर्ण चन्द्रमा की अमृतधारा को वरसाने वाली चांदनी दीखती है, यह सब योग साधन में लगेहुए सावधानचित्त साधक की योगसाधना के लक्ष्य ब्रह्म आविर्भाव का पूर्वाभास दिखाते हैं। साधक ब्रह्म के प्रकाश के पहिले चिह्नस्वरूप इन सकल आश्चर्यकारक, मन को आनन्द देनेवाले सुखदायक दृश्यों के देखने में विह्वल हो-

बाहरी विषयों से निर्लिप्त होकर शीघ्र ही ब्रह्म-पद को प्राप्त हो जाता है ॥ ११ ॥

पृथ्व्यप्तेजोनिलखे समुत्थिते, पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते । न तस्य रोगो न जरा न दुखं, प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे) पृथिवी, जल, तेज वायु और आकाश के (समुत्थिते) योगज्ञानगम्य होने पर (पञ्चात्मके) पांचभूत से उत्पन्न (योगगुणे) योगगुण के (प्रवृत्ते) प्रवृत्त होनेपर (योगाग्निमयम्) योगाग्निस्वरूप (शरीरम्) शरीर को (प्राप्तस्य) प्राप्तहुए (तस्य) तिस को (रोगः) रोग (न) नहीं (जरा) बुढ़ापा (न) नहीं (दुःखम्) दुःख (न) नहीं ॥ १२ ॥

(भावार्थ)–पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंचमहाभूतों के विषय का योग-ज्ञान उत्पन्न होने पर और पृथिवी आदि पंच महाभूत से उत्पन्न योग के गुण की प्रवृत्ति होजाने पर साधक का शरीर योगरूप अग्नि से व्याप्त होजाता है, जिस समय साधक तिस परमकान्तिमान् योगशरीर को पाजाता है उस समय इस के शरीर के सकल दोष इस अग्नि में भस्म होजाते हैं । योगशरीर को धारण करनेवाला साधक चिरकाल के लिये आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इस तीन प्रकार की विपत्ति से रक्षा पाता है, उस का रोग, बुढ़ापा और दुःख चिरकाल के लिये योगाग्नि में भस्म होजाता है । ऐसी योगप्रवृत्तियों में से यदि सब न होकर किसी

के कोई एक भी होजाय तो उस को प्रवृत्त
योग कहाजाता है ॥ १२ ॥

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्र-
सादः स्वरसौष्ठवञ्च । गन्धः शुभो
मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां
वदन्ति ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ--(लघुत्वम्) शरी
का हलकापना (आरोग्यम्) रोग न होन
(अलोलुपत्वम्) लोभरहित होना (वर्णप्र
सादः) रंग की उज्ज्वलता (च) और (स्व
सौष्ठवम्) स्वरकी सुन्दरता (शुभः) प्रसन्नत
देनेवाला (गन्धः) गन्ध (अल्पम्) थोड़
(मूत्र पुरीषम्) मूत्र और मल (इत्येताम्) इ
को (प्रथमाम्) पहिली (योगप्रवृत्तिम्) योग
प्रवृत्ति (वदंति) कहते हैं ॥ १३ ॥

(भावार्थ)--प्रवृत्तयोग साधक के शरीर में हलकापन, रोगरहितपना, कांति होना, स्वर की मधुरता, सुन्दर गन्ध और मल मूत्र की कमी को ही योग के तत्त्व को जाननेवाले विद्वान् योग की पहिली प्रवृत्ति अर्थात् फल कहते हैं । योगप्रवृत्त पुरुष में सब से पहिले यह लक्षण प्रकट होते हैं । इन लक्षणों से ही योगमग्न साधक के अपार्थिव सुख के विषय को हृदयंगम कियाजासकता है ॥ १३ ॥

यथैव विम्बं मृदयोपलिप्तं, तेजोमयं भ्राजते तत् सुधातम् । तद्वाऽऽत्म-तत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ--(यथा) जैसे (मृदया मृदा) मट्टी से (उपलिप्तम्) मलिन किया-

हुआ (पश्चात्) पीछे (सुधातम्-सुधौतम्)
भलीप्रकार धोया (तत्) वह (तेजोमयम्)
दमकता हुआ (भ्राजते) शोभा पाता है
(तद्वा तद्वत्)तिस की ही समान(आत्मतत्त्वम्)
आत्मतत्त्व को (प्रसमीक्ष्य) उत्तम रीति से
देख (एकः) एक (देही) शरीरधारी (कृता-
र्थः) कृतकृत्य (वीतशोकः) शोकरहित
(भवते) होता है ॥ १४ ॥

(भावार्थ) जैसे दमकताहुआ सुवर्ण आदि
धातु का टुकडा पहिले मट्टी आदि के लेप से
मैला होजाने पर भी, पीछे से भले प्रकार धो
डालने से अर्थात् उस को जल में या अग्नि
में स्वच्छ करने पर वह फिर तैसा ही दमक-
दार दीखने लगता है तैसे ही संसारताप से
मलिन हुए मनुष्य आत्मतत्त्व की खोज करने
से आत्मा के रहस्य को समझकर सकल

शोक ताप से छूटते हुए कृतार्थ होजाते हैं, उन की सब मलिनता आत्मतत्त्वदर्शनरूप अग्नि में दग्ध होजाती है अर्थात् एक आत्मतत्त्व के खोजी महात्मा ही दुर्लभ आत्मतत्त्व का दर्शन करके अतिदुर्लभ मनुष्य जीवन की सार्थकता करतेहुए मोक्षमार्ग के बटोही होसकते हैं ॥ १४ ॥

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्। अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यदा) जब (तु) तौ (युक्तः) योगयुक्त साधक (इह) यहां (दीपोपमेन) दीपक की समान (आत्मतत्त्वेन) आत्मतत्त्वके द्वारा (ब्रह्मतत्त्वम्) ब्रह्मतत्त्व को

(प्रपश्येत्) देखै (तदा) तब (अजम्) अजन्मा (ध्रुवम्) सनातन (सर्वतत्त्वैः) अविद्या और उसके कार्यों से (विशुद्धम्) स्पर्श न कियेहुए (देवम्) परमात्मा को (ज्ञात्वा) जानकर (सर्वपाशैः) सकल संसारपाशों से (मुच्यते) छूठ जाता है ॥ १९ ॥

(भावार्थ) जब योगयुक्त साधक, दीपक की समान स्वप्रकाश स्वरूप आत्मतत्त्व के द्वारा परमात्मतत्त्व का दर्शन करसकता है, उस समय वह सनातन, अक्षर अविद्या की छूत के दोष से रहित सर्वतत्त्वों से पर परमात्मा को जानकर सब प्रकार के संसार के बन्धनों से छूटकर मुक्ति पाता है। ज्ञान से साधक को जिस समय मैं ही ब्रह्म हूँ, ऐसी अभेदबुद्धि होजाती है, उस समय उस को ब्रह्म का साक्षात्कार होता है, ऐसे ज्ञानवान् महात्मा

को फिर संसारबन्धन में नहीं पड़ना पड़ता है। उस की ज्ञानरूप तीखी खड्ग की पैनी नोक से सब प्रकार की फांसी के टुकडे २ होजाते हैं और वह मुक्ति पाकर चिरकाल को कृतार्थ होजाता है ॥ १५ ॥

एष हि देवः प्रदिशोनु सर्वाः, पूर्वो हि जातः स उ गर्भे अन्तः। स विजातः स जनिष्यमाणः, प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ–(हि) निश्चय करके (एषः) यह (देवः) परमात्मा (प्रदिशः) पूर्वादि दिशा (अनु सर्वाः) अग्नि आदि उपदिशा हैं (स हि) वह ही (पूर्वः) प्रथम (जातः) उत्पन्नहुआ (स उ) वह ही (गर्भे) गर्भ में (अन्तः) भीतर है (स वि) वह ही

(जातः) उत्पन्न हुआ (सः) वह (जनिष्यमाणः) आगे को उत्पन्न होगा (सर्वतोमुखः) सब प्राणियों की ओर मुखवाला है (जनान् प्रत्यङ्) सब प्राणियों के पीछे (तिष्ठति) स्थित रहता है ॥ १६ ॥

(भावार्थ) आत्मतत्त्व के द्वारा परमात्मा को जानै; यह पहिले कहा है. तिसकी रीति कहते हैं कि—यह परमदेव परमात्मा ही पूर्वादि सकल दिशा और अग्निकोण आदि उपदिशा है, अर्थात् यह सर्वदा सब दिशाओं में विराजमान है, यह सब का आदि है क्योंकि—यह ही सब से पहिले हिरण्यगर्भरूपसे जन्मा है, यह ही सब के भीतर वर्त्तमान है जगत् में जो कुछ भी उत्पन्न हो वह सब इस का ही एक रूप है, यह ही बालकरूप से जन्म धारताहै और आगे कोभी यह परमात्माही जन्म धारण करैगा, यह

ही सर्वदा सब प्राणियों में स्थित होकर विश्व के सब प्राणियों के पीछे वर्तमान रहता है, यही कर्म है, इस के सिवाय जगत् में और कुछ नहीं है, एक यही सत् है, और जो कुछ हम देखते या सुनते हैं वह सब परमदेव परमात्मा की परछाहीं मात्र है, ऐसे चिन्तवन से आत्मा का परमतत्त्व प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु. यो विश्वं भुवनमाविवेश। य ओषधीषु यो वनस्पतिषु, तस्मै देवाय नमो नमः॥१७॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (देवः) देव (अग्नौ) अग्नि में है (यः) जो (अप्सु) जल में है (यः) जो (विश्वम्) सकल (भुवनम्) भुवन में (आविवेश) प्रविष्ट हुआ (यः) जो (औषधीषु) औषधों में है (यः)

जो (वनस्पतिषु) वनस्पतियों में है (तस्मै) तिस (देवाय) देव के अर्थ (नमोनमः) बार वार नमस्कार है ॥ १७ ॥

(भावार्थ) योगसाधन आदि की समान परमात्मा को प्रणाम भी करना चाहिये, सोई कहते हैं कि—जो परमदेवता अग्नि का तेजःस्वरूप जलका शीतलता स्वरूप सकल संसारमण्डप का आश्रय दण्डस्वरूप और जो धान्यादि में तथा अश्वत्थादि वृक्षों में निरन्तर रहता है उस विश्वात्मक भुवनमूल परमात्मा को वार वार नमस्कार है ॥ १७ ॥

इति श्वेताश्वतर उपनिषद् का दूसरा अध्याय समाप्त ।

तृतीय अध्याय ।

य एको जालवान् ईशत ईशनीभिः सर्वाँल्लोकानीशत ईशनीभिः । य एवैक उद्भवे सम्भवे च, य एतद्विदुर-मृतास्ते भवन्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यः) जो (एकः) अद्वितीय (जालवान्) जालरूप मायावाला (ईशिनीभिः) अपनी शक्तियों से (ईशते--ईष्टे) नियमित करते हैं (सर्वान्) सब (लोकान्) लोगों को (ईशिनीभिः) परमशक्तियों से ईशते–ईष्टे) नियमित करते हैं (यः) जो (उद्भवे) जगत् की उत्पत्ति के समय (सम्भवे च) पालन के समय में भी (एकः एव) एक ही (हेतुः) करण (ये) जो (एतत्) इस परमा-

त्मा को (विदुः) जानते हैं (ते) वह (अमृताः) अमर (भवन्ति) होते हैं ॥ १ ॥

(भावार्थ) जो अद्वितीय, मायावी, परम-पुरुष अपनी परमशक्ति के बल से दृष्ट अदृष्ट सकल पदार्थों पर अपनी प्रभुता चलाते हैं जो अपनी उस मायामयी शक्तिके द्वारा त्रिलोकीका पालन करते हैं। जिन एक परमात्मा से ही सकल जगत् की उत्पत्ति और रक्षा होती है अर्थात् विश्व का उत्पन्न करने-वाला और पालन करनेवाला जिन के सिवाय दूसरा कोई नहीं है ऐसे दुरत्यया मायावाले परम शक्तिमान् परमात्मा को जो जानते हैं, वह मरणधर्मी होकर भी अमर पद के अधि-कारी हैं ॥ १ ॥

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः। प्रत्यङ्

जनाँस्तिष्ठ सञ्चुकोपान्तकाले संसृ-
ज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हि)क्योंकि(रुद्रः)सृष्टि आदि करने वाला रुद्र (एकः) एक है(यः) जो (इमान्) इन (लोकान्) लोकों को) ईशिनीभिः) परम शक्तियों से (ईशते ईष्टे) नियमित करता है (अतः ब्रह्मतत्त्वज्ञाः) इस कारण ब्रह्म के तत्त्व को जाननेवाले (द्वितीयाय) दूसरे के निमित्त (न) नहीं (तस्थुः) जमे (सः) वह (जनान् प्रत्यङ्) पुरुष २ के प्रति (तिष्ठति) स्थित है (: विश्वा) सकल (भुवनानि) भुवनों को (संसृज्य) उत्पन्न करके (गोपाः) रक्षक (भवति) होता है (अन्तकाले) प्रलय कालमें (संचुकोप) कोप में आकर प्रलय करता है ॥ २ ॥

(भावार्थ) सृष्टि, स्थिति और प्रलय के करने-वाले परब्रह्म ही अपनी परम शक्तियों की सहा-यता से इन सकल भुवनों पर प्रभुता रखते हैं, इस कारण ही तत्त्वज्ञानी पण्डित विश्व की रचना के विषय में एक ब्रह्म को ही कर्त्ता मानते हैं, उन के मत से विश्व की रचना के कार्य में ब्रह्म के सिवाय दूसरा और कोई कर्त्ता नहीं है। वह शक्तिमान् परमपुरुष नियम के साथ हरएक पदार्थ के भीतर विराजमान है यदि शास्त्र की बोली में कहाजाय तो "वह रूप रूपमें प्रतिरूप होरहा है"। एक वह ही इस सकल विश्व को उत्पन्न करके इस की रक्षा करता है और वही फिर युग के अन्तकाल में कोप में भरकर प्रलय करता हुआ अपने रचेहुए विश्व का संहार करता है। इसी कारण उस के गुणा-तीत होने पर भी, सत्त्व रज तम इन तीनों

शक्तियों का कार्य उस में ही से निकल कर उस ही में लीन होजाता है। सृष्टि, स्थिति और प्रलय यह तीन अवस्थाएं एक उस की ही माया-मयी शक्ति का भीतरी भेद है। इसी कारण पहिले मंत्र में उस माया से अछूते परम देवता-को (मायावी—जालवाला) यह विशेषण दिया गया है और इसी कारण तत्त्वदर्शी विद्वान् एक उसको ही जगत्कर्त्ता मानते हैं। वह रजोगुण रूप शक्ति के बल से विश्व की सृष्टि करके ब्रह्मा नाम को, सत्त्वगुणमयी शक्ति के बल से विश्व का विकाश और पालन करके विष्णु नाम को और तमोगुणमयी शक्ति के बल से विश्व का विध्वंस करके रुद्र नाम को पाते हैं, वह कार्य से तीन नामवाले होने पर भी, स्वरूप से अद्वितीय और अनन्त हैं, उनके सिवाय

और कोई जगत्का रचनेवाला, पालनेवाला वा प्रलय करनेवाला नहीं है ॥ २ ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखः विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् । सम्बाहु-भ्यां धमति सम्पतत्रैः द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ--(सः) वह (विश्वत-श्चक्षुः) सब प्राणियों का द्रष्टा (उत) और (विश्वतो मुखः) सर्वमुख (उत) और (विश्व-बाहुः) सर्वत्र बाहुरूप से विराजमान (उत) और (विश्वतस्पा सर्वगामी (एकः) एक (देवः) देव (द्यावाभूमी) स्वर्ग मृत्युलोक को (संजनयन्) उत्पन्न करता हुआ (बाहुभ्याम्) भुजाओं से (मनुष्यादीन्) मनुष्य आदि को

(पतत्रैः) पक्षों से (पक्ष्यादीन्) पक्षी आदि को (संधमति) संयुक्त करता है ॥ ३ ॥

(भावार्थ) उस बड़ी भारी महिमा वाले, विराट् पुरुष के नेत्र सब ओर लगे हुए हैं अर्थात् वह सब कुछ देखता है, सर्वत्र ही उस के मुख हैं और सर्वत्र उसके चरण हैं अर्थात् वह सब का ग्रहण करनेवाला सब का धारण करनेवाला और सर्वगामी है उस अद्वितीय परम देवता ने आकाश और पृथिवी को उत्पन्न करके मनुष्यादिकों को भुजदंडों से और पक्षी आदिकों को पक्ष आदि से युक्त किया है, वही एक मात्र स्वर्ग और मृत्युलोक का रचने वाला है, इस सकल विश्व में उसको, जहां न जासके ऐसा जिस को न ले सकै ऐसा जिस को न देख सके ऐसा और जिस को न छू सके ऐसा कुछ नहीं है ॥ ३ ॥

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः । हिरण्यगर्भं रचयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ--(देवनाम्) देवताओं का (प्रभवः) उत्पत्ति का हेतु (उद्भवः) शक्ति का हेतु (च) और (विश्वाधिपः) विश्वपति (महर्षिः) सर्वज्ञ (यः) जो (रुद्रः) रुद्रदेव (पूर्वम्) पहिले (हिरण्यगर्भम्) अति निर्मल ज्ञानवान् हिरण्यगर्भ पुरुष को (जनयामास) उत्पन्न करता हुआ (सः) वह (नः) हम को (शुभया) मंगलकारिणी (बुद्ध्या) बुद्धि से (संयुनक्तु) संयुक्त करै ॥ ४ ॥

(भावार्थ) जिस के अनुग्रह से इन्द्रादि देवता रचित होकर अपनी २ प्रभुता को पाते

हुए अमरराज्य में आधिपत्य करते हैं, जो इस सकल संसार के अद्वितीय अधीश्वर हैं, जिनको न जाना हुआ कुछ नहीं है, जिन्होंने सर्वज्ञ रुद्र स्वरूप से सृष्टि के प्रथम में अति निर्मल ज्ञानवाले हिरण्यगर्भ पुरुष को रचा था। वह परमदेव अद्वितीय पुरातन पुरुष हम को परम पदकी प्राप्ति करनेवाली शुभ बुद्धि से युक्त करै अर्थात् हम को आत्मतत्त्व का दर्शन कराने वाली बुद्धि शक्ति से शक्तिमान करै ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये ॥ ४ ॥

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापका-
शिनी। तया नस्तनुवा शन्तमया
गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥ ५॥

अन्वय और पदार्थ--(रुद्र) हे रुद्र ! (गिरि-शन्त) हे गिरीश ! (ते) तुम्हारी (या) जो

(शिवा) मङ्गलमयी (अघोरा) अभयदायिनी (पापकाशिनी) स्मरण मात्र से पाप का नाश करनेवाली (तनूः) शरीर (अस्ति) है (तया) तिस (शन्तमया) परम सुखमयी (तनुवा--तन्वा) शरीर करकै, (नः) हम को (अभिचाकशीहि) देखिये ॥ ५ ॥

(भावार्थ) हे रुद्र हे गिरिशन्त हे अनन्त आनन्दमय ! तुम पर्वत पर शयन करते हुए विश्वभर के मङ्गल करनें का व्रत धारण करे रहते हो, इसीकारण आप से हमारा निवेदन है कि--आप की जो मङ्गलमयी, अविद्या और उस के कार्यों से निर्लिप्त अभय देनेवाली, चांदनी की समान आनन्द देनेवाली और पुण्य को प्रकट करनेवाली अर्थात् स्मरणमात्र से ही पाप का नाश करने वाली तनू (शरीर) है, आप कृपा करके एक

बार इस अनन्त सुखमय शरीर के द्वारा हमारी ओर को निहारिये, जिस से कि-हमारा कल्याण हो, यही हमारी परम प्रार्थ-ना है ॥ ५ ॥

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्त-वे। शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳ सीः पुरुषं जगत्॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ–(गिरिशन्त) हे गि-रिशायिन् (गिरीश) हे गिरिरक्षक ! (अस्त-वे) प्रलय करने के लिये (याम्) जिस (इषुम्) बाण को (हस्ते) हाथ में (बि-भर्षि) धारण करते हो (ताम्) उस को (शिवाम्) मङ्गलकारी (कुरु) करिये (पुरु-षम्) पुरुषरूप से विराजित (जगत्) जगत् को (मा हिंसीः) नष्ट न करिये ॥ ६ ॥

(भावार्थ) अब प्रार्थना की रीति कहते हैं कि–हे अचलशायिन् ! हे भूधरत्रात ! तुम प्रलय के लिये जिस बाण रूपिणी महाशक्ति को धारण किये हुए हो, अपनी उस संहारिणी शक्ति को मंगलकारिणी करिये, उस अमोघ शक्ति के द्वारा पुरुषरूप से विराजमान जगत् का संहार न करिये, अर्थात् जगन्मय आकृति-मान् ब्रह्म का दर्शन कराइये । विश्व में सर्वत्र विराजमान विश्वनाथ की आकृतिमयी मूर्ति के दर्शन से हम को निराश न करिये, हम को साकार ब्रह्म का साक्षात्कार करनेदी-जिये ॥ ६ ॥

ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तं, यथानि-कायं सर्वभूतेषु गूढम् । विश्वस्यैकं परिवेष्टितारम्, ईशं तं ज्ञात्वामृता भवन्ति ॥७॥

अन्वय और पदार्थ-(साधकाः) साधक (ततः) तिस जगत् से (परम्) श्रेष्ठ (परब्रह्म) हिरण्यगर्भ से श्रेष्ठ (बृहन्तम्) बृहत् (यथानिकायम्) सब शरीरों में वर्तमान (सर्वभूतेषु) सकल प्राणियों में (गूढम्) गुप्त (विश्वस्य) विश्व के (एकम्) एक (परिवेष्टितारम्) व्यापक (तम्) उस (ईशम्) ईश को (ज्ञात्वा) जानकर (अमृताः) अमर पद को प्राप्त (भवन्ति) होते हैं॥ ७॥

(भावार्थ) उस अमृतयोनि वेदमें प्रसिद्ध परात्पर का ध्यान करते २ साधक पुरुष युक्त जगत् से भी महान्, हिरण्यगर्भ से भी श्रेष्ठ और अतिबृहत् तथा प्रतिशरीर में वर्तमान, विश्व के सकल पदार्थों में छुपे हुए, जगत् के एकमात्र, अद्वितीय, सर्वव्यापक, उस परात्पर परमात्मा को जानकर अमरपद को पाते हैं॥७॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाति मृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अहम्) मैं (आदित्यवर्णम्) स्वप्रकाश (तमसः)अज्ञान से (परस्तात्) पर (महान्तम्) पूर्ण (एतम्) इस (पुरुषम्) पुरुष को (वेद) जानता हूँ (तम् एव) उसको ही (विदित्वा) जानकर (मृत्युम्) मृत्यु को (अत्येति) अतिक्रमण करता है (अयनाय) परमपद को पाने के लिये (अन्यः) और (पन्थाः) मार्ग (न) नहीं (विद्यते) है ॥ ८ ॥

(भावार्थ) तदनन्तर मन्त्रद्रष्टा साधक के हृदय में नीचे कहाहुआ आत्मविश्वास उत्पन्न

होकर उसको पूर्णानन्द अद्वितीय ब्रह्म का ज्ञान होजाने के कारण परमपद प्राप्ति का अधिकारी करदेता है। यथा--मैं इस नित्यप्रकाशस्वरूप, विशुद्ध, ज्ञानमय, मोहरहित, पूर्ण अखण्ड पुरुष को जानता हूँ। उस को जानलेने पर मृत्यु के मार्ग को लांघजाता है अर्थात् उसके स्वरूप का ज्ञान होजाने पर साधक की, अज्ञान के कारण फैलीहुई झूँठी संसार की आसक्तिरूप कठिन से कटनेवाली फाँसी की गांठ कट जाती है, साधक मोक्षपद को पाजाता है और उसको बार २ जन्म मरण के कारण दुःख की दुःसह पीडा नहीं भोगनी पडती है, इस के सिवाय मायामोहित जीव को परमपद प्राप्त होने का दूसरा कोई उपाय नहीं है ॥८॥

यस्मात् परं नापरमस्ति किंचि-
द्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किं

चित् । वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठ-
त्येकः तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥९॥

अन्वय और पदार्थ-(यस्मात्) जिस से (परम्) श्रेष्ठ (अपरम्) अश्रेष्ठ (किञ्चित्) कुछ (न) नहीं (अस्ति) है (यस्मात्) जिस से (अणीयः) सूक्ष्म (किञ्चित्) कुछ (न) नहीं (ज्यायः) बडा (न) नहीं (अस्ति) है (एकः) एक (वृक्ष--इव) वृक्ष की समान (स्तब्धः) निश्चल (दिवि) प्रकाशरूप अपनी महिमा में (तिष्ठति) स्थित है (तेन) उस (पुरुषेण) पुरुष करके (इदम्) यह (सर्वम्) सब (पूर्णम्) निरन्तर व्याप्त है ॥ ९ ॥

(भावार्थ) पूर्व मन्त्र में कहा है कि "उस को जानलेने से मृत्युलोक के पार होजाता है" अब उस मृत्यु मार्ग के पार होने का हेतु दिखाते हैं कि, वह कैसा है? जिस से श्रेष्ठ वा अश्रेष्ठ कुछ

नहीं है अर्थात् उत्कर्ष और अपकर्ष यह दोनों जिस अचिन्त्यशक्ति परमपुरुष में विरोध को छोड़कर रहते हैं, जो छोटे से भी छोटा और बड़े से भी बड़ा है अर्थात् छोटापन और बड़ापन जिस महामहिमाशाली पुरुष में एकसाथ रहते हैं। जो अद्वितीय परमपुरुष वृक्ष की समान निश्चल होकर अपनी प्रकाशस्वरूप महिमा में सर्वदा विराजमान रहता है, जिस की विश्वप्रकाशिका शक्तिरूप दर्पण में यह सकल भुवन सदा प्रतिबिम्बित रहते हैं, उस परमशक्तिशाली परमपुरुष से यह सब दृश्य और अदृश्य चराचर समस्त जगत् निरन्तर परिव्याप्त है, इसकारण एक उस को जानलेने से ही विश्व के सकल पदार्थों का ज्ञान होजाता है, सब जाननेयोग्य एक उस के ज्ञान में ही समाया हुआ है ॥ ९ ॥

ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम् ।
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःख-
मेवापियन्ति ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (ततः) तिस जगत् से (उत्तरतरम्) परमश्रेष्ठ है (तत्) वह (अरूपम्) रूपरहित (अनामयम्) तीनों तापों से रहित है (ये) जो (एतत्) इस को (विदुः) जानते हैं (ते) वे (अमृताः) अमर (भवंति) होते हैं (अथ) और (इतरे) दूसरे (दुःखम्) दुःखको (एव) ही (अपियंति-आप्नुवन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

(भावार्थ)-जो जगत् से अतीत है अर्थात् जिस में कार्यकारणपना रूप जगत् के धर्मों का लेश भी नहीं है उस परात्पर परम पुरुष का कोई रूप नहीं है तथा आध्यात्मिक,

आधिदैविक, और आधिभौतिक इन तीनों तापों से मुक्त है इसी कारण उस में तीनों तापों की यातना नहीं होसक्ती है, वह सब प्रकार की यातनाओं के मार्ग से अगले मार्ग में रहता है, जो सकल प्रारब्धी महात्मा उस को जानलेते हैं, उन को फिर संसार की जंजीरों में नहीं बँधना पड़ता है, वह समाधि के प्रभाव से शीघ्र ही, उस निर्विकल्प निरञ्जन का सायु-ज्य पाकर अमर होजाते हैं और जो इस अनु-पम ज्ञान के अधिकारी नहीं हो सकते हैं या होनेकी चेष्टा नहीं करते हैं, वह ही संसार की असह्य दुःखाग्नि में और कठिन से तरने योग्य माया समुद्र में निरन्तर डूबे रहकर बडे २ दुःखों को ही भोगते रहते हैं ॥ १० ॥

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।

सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात्सर्वगत शिवः ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ–(सः) वह (भगवान्) सर्वैश्वर्यशाली (सर्वाननशिरोग्रीवः) विश्व में के सकल मुख, शिर और ग्रिवाएं जिसकी हैं ऐसा (सर्वभूतगुहाशयः) सब प्राणियों के हृदय के भीतर वर्त्तमान (अस्ति) है (तस्मात्) तिस कारणसे (सर्वगतः) सब में स्थित (शिवः) मङ्गलरूप है ॥ ११ ॥

(भावार्थ)--इस विश्व में दीखनेवाले, और न दीखनेवाले सब ही पदार्थ उस परम ऐश्वर्यवान् प्रभु के मुख मस्तक और ग्रीवारूप हैं, वह सब के भीतर अपनी महती शक्ति से वर्तमान है वह सर्वव्यापी और सकल ऐश्वर्यों से युक्त है, वह सर्वदा सब पदार्थों में मङ्गलमय,

रूप से विराजमान रहता है, सार यह है कि वह सब का आत्मा है और इस के आधार से ही सब पदार्थ अपने स्वरूप में रह सकते हैं ॥ ११ ॥

महान् प्रभुर्वै पुरुषःसत्त्वस्यैष प्रवर्त्त-कः। सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वै) निश्चय (एषः) यह (पुरुषः) परमात्मा (महान्) सब से बडा, अद्वितीय (प्रभुः) समर्थ (सत्त्वस्य) अन्तःकरण का (प्रवर्त्तकः) प्रेरक (सुनिर्म-लाम्) स्वरूपावस्थारूप (प्राप्तिम्) परमपद की प्राप्ति का (ईशानः) नियन्ता (ज्योतिः) विशुद्ध-विज्ञान-प्रकाश (अव्ययः) अविनाशी (अस्ति) है ॥ १२ ॥

(भावार्थ)–वह अनुपम शक्तिवाला, सृष्टि स्थिति प्रलय करने में समर्थ परमपुरुष परमात्मा ही सकल प्राणियों के अन्तःकरण का प्रवर्त्तक और अपने स्वरूप में रहनेवाली पुनरावृत्ति से रहित परमपद की प्राप्ति का देनेवाला है, वही विशुद्ध-विज्ञान-प्रकाश और अविनाशी है, उसका मनन आदि करने से साधक उस के पद की प्राप्ति का अधिकारी होकर जन्म मरण की शृंखला (जंजीर) को तोड सकता है ॥ १२ ॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः । हृदा मन्वीशो मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अन्तरात्मा) अन्त-

र्यामी (पुरुषः) पुरुष (अंगुष्ठमात्रः) अंगूठे के परिमाण का (सदा) सब काल में (जनानाम्) प्राणियोंके (हृदये) हृदय में सन्निविष्टः स्थित (मन्वीशः-ज्ञानेशः) ज्ञान का स्वामी है (मनसा) मनोमय नेत्र के द्वारा (अभिक्लृप्तः) प्रकाशित होता है (ये) जो (एतत्) इसको (विदुः) जान लेते हैं (ते) वह (अमृताः) अमर (भवंति) होते हैं ॥ १३ ॥

(भावार्थ) प्रकट होने के स्थानके अनुसार अंगुष्ठमात्र के परिमाण से हृदय के भी भीतर शयन करनेवाला अन्तर्यामी परमपुरुष सब समय सब के हृदयों में स्थित रहता है, वह अखण्ड ज्ञानमय है, मनोरूप नेत्र के द्वारा उस का दर्शन होसकता है अर्थात् मनन आदि रूप सम्यक् दर्शन के द्वारा वह साधक के नेत्रों में

प्रतिबिम्बित होता है अथवा यह मन के द्वारा प्रकाशित मनोराज्य का स्वामी है, उस को मनकी स्थिरता आदि के द्वारा पाया जा सकता है, जो चतुर विवेकी इस को जान जाते हैं वह शीघ्र ही अमर हो जाते हैं ॥ १३ ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (सहस्रशीर्षा) अनन्त मस्तकवाला (सहस्राक्षः) अनन्त नेत्रोंवाला (सहस्रपात्) अनन्त चरणवाला (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा (भूमिम्) भूमिको (विश्वतः) सब ओर (वृत्वा) व्यापकर (दशांगुलम्) अनन्त अपार अथवा नाभि से ऊपर दश अंगुल के हृदयस्थलमें

(अति अतिष्ठत्) अतिक्रमण करके स्थित हुआ ॥ १४ ॥

(भावार्थ) वह अनन्त मस्तक, अनन्त नयन और अनन्त चरण वाला पूर्ण परमात्मा पृथिवी के भीतर और बाहर व्याप्त होकर अनन्त अपार भुवन में सर्वत्र स्थित है, अथवा नाभिदेश के ऊपर दश अंगुल के हृदय में विराजमान है, इस पृथिवी पर सब ही उस से व्याप्त हैं और सर्वत्र उस ही का फैलाव हो रहा है ॥ १४ ॥

पुरुष एवेद ँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत्) जो (भूतम्)

बीतगया (च) और (यत्) जो (भव्यम् भ-
विष्यत्) होगा (इदम्) यह (सर्वम्) सब
(पुरुषः) परमात्मा (एव) ही है, (अमृतत्व-
स्य) कैवल्यपद का (उत) और (यत्) जो
(अन्नेन) अन्न के द्वारा (अतिरोहति) परि
पुष्ट होता है (तस्य) तिस का (ईशानः
स्वामी है ॥ १५ ॥

(भावार्थ) भूत भविष्यत् वर्तमान स
कुछ वह परमात्मा ही है, इस सब का उ
के सिवाय और कोई कर्ता नहीं है, एक व
ही अमर पद का विधाता है इस विश्व में ज
जो कुछ अन्न से परिपुष्ट होता है, उस क
नियन्ता भी एक वह परम पुरुष ही है अर्था
इस जगत् में उसके सिवाय और कुछ न
है ॥ १५ ॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (सर्वतः) सब ओर (पाणिपादम्) हाथ पैरवाला है (सर्वतः) सब ओर (अक्षिशिरोमुखम्) नेत्र, शिर और मुखवाला है (सर्वतः) सब ओर (श्रुतिमत्) श्रवण शक्तिवाला है (तत्) वह (लोके) लोक में (सर्वम्) सबको (आवृत्य) व्यापकर (तिष्ठति) स्थित है॥ १६ ॥

(भावार्थ) फिर निर्विशेषभाव से उसकी व्यापकता दिखाते हैं कि-उस के हाथ और पैर सर्वत्र ही विराजमान हैं, उस के नेत्र, शिर और मुख सर्वत्र ही विद्यमान हैं और उस की श्रवणशक्ति भी सर्वत्र ही वर्त्तमान रहती है,

वह सकल ब्रह्माण्ड में व्यापकर सकल प्राणियों में विराजमान रहता है ॥ १६ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् । सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ–(ब्रह्मतत्त्वज्ञाः) ब्रह्म के तत्त्व को जाननेवाले (सर्वेन्द्रियगुणाभासम्) सकल इन्द्रियों की शक्ति के प्रकाशक (सर्वेन्द्रियविवर्जितम्) सकल इन्द्रियों से रहित (सर्वस्य) सब के (प्रभुम्) प्रभु (ईशानम्) नियन्ता (सर्वस्य) सब के (बृहत्) बड़े (शरणम्) आश्रय को (वदंति) कहते हैं ॥ १७॥

(भावार्थ) ब्रह्म के तत्त्व को जाननेवाले पण्डित कहते हैं कि–वह आप समस्त इंद्रियों से रहित होकर भी सकल संसार की शक्तियों

का प्रकाशक और सब का प्रभु है, तथा सकल संसार का नियामक एकमात्र वह ही है, वह बडों से भी बड़ा है और वह ही इस जगत् का एकमात्र निर्मल आश्रय है ॥ १७ ॥

नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः। वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्थावरस्य) स्थावर का (चरस्य) जंगम का (च) भी (सर्वस्य) सकल (लोकस्य) लोक का (वशी) नियामक (हंसः) सकल अज्ञान का नाशक (नवद्वारे) नौद्वार वाले (पुरे) देह में (देही दिह्यते क्लिश्यते शोकमोहादिभिः इति देहः, तद्विशिष्टः सन्) शोक मोहादि क्लेशों के पात्र देह का धारण करनेवाला होकर (बहिः) बाहर (लेलायते) गमनागमन करता है ॥ १८ ॥

(भावार्थ) एक वही स्थावर और जंगम सकल लोकों का नियामक है, वह ही अविद्या-रूप अन्धकार का नाश करनेवाला परमात्मा इस नौ द्वार (दो नासिका के, दो कानों के, दो नेत्रों के; मुख, गुदा, और मूत्रद्वार इसप्रकार नौ द्वार) वाले नाशवान् शरीर में शोक मोह आदि क्लेशों के पात्ररूप से विराजमान होकर बाहर के विषयों को भोगता है, परन्तु वास्तव में वह पाप के लेप से रहित सनातन पुरुष है ॥ १८ ॥

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता, पश्यत्य-चक्षुः स शृणोत्यकर्णः । स वेत्तिवे-द्यं न तस्यास्ति वेत्ता, तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥ १९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (अपाणिपादः) हाथ पैर रहित (सन्नपि) होकर भी (जवनः) वेगवाला (ग्रहीता) ग्रहण करनेवाला (अस्ति) है (सः) वह (अचक्षुः सन्) चक्षुरहित होकर (पश्यति) देखता है (अकर्णः सन्) कान रहित होकर (शृणोति) सुनता है (सः) वह (वेद्यम्) जानने-योग्य को (वेत्ति) जानता है (तस्य) उस का (वेत्ता) जाननेवाला (न) नहीं (अस्ति) है (तम्) उसको (अग्र्यम्) प्रथम् (महान्तम्) पूजनीय (पुरुषम्) पुरुष (आहुः) कहते हैं ॥ १९ ॥

(भावार्थ) वह परम पुरुष हाथ पैर आदि से रहित होकर भी अलंघ्य वेगवाला और सकल पदार्थों को ग्रहण करने में समर्थ है, वह बाहरी नेत्रों से रहित भी अपनी सनातनी

प्रज्ञा के बल से सब को ही देखता है, उसके साधारण लौकिक कान न होने पर भी अपनी ऐश्वर्यशक्ति से सब कुछ सुनता है, वह जाननेयोग्य सब ही बातों को विशेषरूप से जानता है, तत्त्वज्ञानी परन्तु उस को जानने वाला कोई नहीं है, क्योंकि वह ज्ञान से पर है तत्त्वज्ञानी विवेकी पुरुष उस को ही एकमात्र अनादि और परमपूजनीय कहतेहैं ॥ १९ ॥

अणोरणीयान् महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः । तम-क्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसा-दान्महिमानमीशम् ॥ २० ॥

अन्वय और पदार्थ–(अणोः) सूक्ष्म से (अणीयान्) सूक्ष्म (महतः) महान् से (महीयान्) बड़ा (आत्मा) आत्मा (अस्य

इस (जन्तोः) प्राणी के (गुहायाम्) हृदय में (निहितः) स्थित है (वीतशोकः) शोकरहित विवेकी (धातुः) विधाता की (प्रसादात्) प्रसन्नता से (तम्) उस (अक्रतुम्) अकाम (ईशम्) ईश्वर को (महिमानम्) उस की महिमा को (पश्यति) देखता है ॥ २० ॥

(भावार्थ) वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और बडे से भी बडा आत्मा इस विश्व के सकल प्राणियों के हृदय में स्थित है, सकल जीवों के हृदय उस की क्रीडा का स्थान है शोक मोह आदि तामस भावों से रहित साधना करने-वाला विवेकी पुरुष ध्यान धारणा आदि के बल से ईश्वर की कृपा का पात्र होकर अपने हृदय में ही उस वासनाहीन हृदयेश्वर को और उस की अनुपम महिमाओं को देखकर कृत-कृत्य होजाता है, यदि देखना आता हो तो

आत्मतीर्थ में ही उस सकल तीर्थों के स्वामी की नयनानन्ददायिनी मूर्ति का दर्शन होजाता है । हम को देखनेकी शक्ति नहीं है इस कारणही हम दर्शन के अभिलाषी होकर जहां तहां घूमते हुए वृथा परिश्रम करते हैं, परन्तु अधिकारी विना हुए आत्मतीर्थ की सेवा करने की इच्छा न करके बाहरी तीर्थों की सेवा करना ही उचित है ॥ २० ॥

वेदाहमेतमजरं पुराणं, सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात् । जन्म निरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनोऽभिव-दन्ति नित्यम् ॥ २१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (एतम्) इस (अजरम्) जरा रहित (पुराणम्) पुरातन (सर्वात्मानम्) सर्वात्मक (सर्वगतम्)

सर्वव्यापी को (विभुत्वात्) व्यापक होने से (वेद) जानता हूँ (ब्रह्मवादिनः) ब्रह्मवादी (यस्य) जिस ईश्वर के (जन्म-निरोधम्) जन्म के रोकनेवाले (ज्ञानम्) ज्ञान को (अभिवदन्ति) प्रणाम करते हैं ॥

(भावार्थ) मैं इस जरा-मरणरहित, सर्वात्मक पुरातन, सर्वगत ईश्वर को प्रकाश की समान सर्व व्यापीरूप से जानता हूँ ब्रह्मज्ञानी पण्डित उसके जिस ज्ञान को ही एक मात्र बार २ के जन्म मरण का नाशक कहते हैं और जिस पुरुष को वह नित्य निरंजन कहकर प्रणाम करते हैं; मैं उस परम दुर्लभ ज्ञान और परम कठिनता से जानने योग्य उस को जानता हूँ, साधक का ऐसा दृढ़ विश्वास यदि पाखण्डीपन की मलिन छाया से दूषित न हों तो इस से ही वह मुक्त होजाते हैं ॥ २१ ॥

इति तीसरा अध्याय समाप्त ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्ति योगाद्
वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति ।
विचैति चान्ते विश्वमादौ स देवः स
नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ--(एकः) एक (अवर्णः) वर्णरहित (निहितार्थः) स्वार्थ रहित (यः) जो (बहुधा) अनेक प्रकार की (शक्तियोगात्) शक्तियों के कारण (अनेकान्) अनेकों (वर्णान्) रूप रसादि विषयों को (दधाति) रचता है (आदौ) प्रथम (विश्वम् (विश्वको (एति) प्राप्त होता है (च) और (अंते) अन्त में (वि-एति) विलीन होता है (सः) वह (देवः) देव (नः) हम को (शुभया) परम हितकारी (बुद्ध्या) बुद्धि से (संयुनक्तु) संयुक्त करे ॥ १ ॥

(भावार्थ) जो अद्वितीय, निराकार और किसी प्रकार की इच्छा नहीं रखने वाला है, जो सर्वथा आसक्ति रहित होकर अपनी अनन्त महिमा के बल से अनन्तों रूप-रस आदि विषयों को रचता है। आदिकाल में जिस अनादि पुरुष से यह सब ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है और अन्त में जिस की अनन्त सत्ता में विलीन होजाता है वह सृष्टि-स्थिति प्रलय का करने वाला परम पुरुष परमात्मा हम को आत्म-हितकारी बुद्धि देकर भीतर बाहर मंगल का प्रकाश करै, उन के चिरमङ्गलमय ज्योतिर्जाल से हम ज्योतिष्मान् हों ॥ १ ॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु च-न्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदापस्त-त्प्रजापतिः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत् एव) वह ही (अग्निः) अग्नि है (तत्) वह (आदित्यः) सूर्य है (तत्) वह (वायुः) वायु है (तत्) वह (उ-एव) ही (चन्द्रमाः) चन्द्रमा है (तत् एव) वह ही (शुक्रम्) तेजोमय नक्षत्रादि है (तत्) वह (ब्रह्म) है (तत्) वह (आपः) जल है(तत्) वह (प्रजापतिः) प्रजापति है ॥ २ ॥

(भावार्थ)-वह ही परम पावन वैश्वानर है, वह ही स्वप्रकाश स्वरूप आदित्य है और वह ही सुन्दर कांतिवाला चन्द्रमा है. तेजोमय सकल तारागण वा विश्व का जीवन जल भी वह ही है, यह सब उस को विभूतियों के प्रकाश का भेदमात्र है, उस के स्वयं रूप से अतीत होने पर भी उस का सारूप्य इस जगत् की तरह २ में ओत प्रोत होरहा है, वह ही ब्रह्म है और वह ही प्रजापति है,

इस के अभिप्राय को लेकर ही भगवान् ने गीता में 'आदित्यानामहं विष्णुः' इत्यादि विभूति अध्याय को कहा है ॥ २ ॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी । त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(त्वम्) तू (स्त्री) जगत् की उत्पत्ति का मूलकारण (त्वम्) तू (पुमान्) जगत् का प्रकाशक (त्वम्) तू (कुमारः) कुमार (उत—वा) और (कुमारी) कुमारी (असि) है (त्वम्) तू (जीर्णः) वृद्ध (दण्डेन) दण्ड के द्वारा (वंचसि) विचरता है (त्वम्) तू (विश्वतोमुखः) सर्वव्यापी (जातः) उत्पन्न (भवसि) होता है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)—हे भगवन् ! तुम ही स्त्री और तुम ही पुरुष हो, अर्थात् जिस में संयत होकर गर्भ खड़ा होता है और उत्पन्न होता है ऐसी जगत के उत्पन्न होने की मूलकारण स्त्री और जगत् को पवित्र वा प्रकाशित करनेवाले पुरुष तुम ही हो, तुम ही कुमार और तुम ही कुमारी हो, तुम ही जराजीर्ण हो दण्डधारण किये हुए वृद्धरूप से विचरते हो, तुम ही सर्वतोमुख अर्थात् सर्वव्यापी रूपसे नए २ भाव में परम-नवीन होकर बालक रूपसे जन्म ग्रहण करते हो, इस भूमण्डल पर तुम्हारे सिवाय और कुछ नहीं है, तुम ही अपनी स्वाधीन महिमा के बलसे उत्पन्न होतेहो और तुम ही उत्पन्न करते हो। यह स्त्री है, यह पुरुष है, यह युवा है, यह युवती है, यह बूढ़ा है, यह बालक है, इत्यादि जो भेदज्ञान है सो अज्ञान के परदे से ढिके हुए

लोगों के नेत्रों की मिथ्यादृष्टि का फलमात्र है, वास्तवमें तुम एक हो, अद्वितीय ही हो, सब कुछ तुम ही हो, आदि मध्य और अन्त तुम ही हो । जन्म, वृद्धि और विनाश यह तीनों अवस्था तुम्हारी ही विभूति का भेद है, तुम अनन्त हो और तुम ही सर्वव्यापी सर्वज्ञ हो ॥ ३ ॥

**नीलः पतंगो हरितो लोहिताक्षस्त-
डिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः । अनादिम-
त्त्वं विभुत्वेन वर्त्तसे यतो जातानि
भुवनानि विश्वाः ॥ ४ ॥**

अन्वय और पदार्थ-(नीलः) नील (पतङ्गः) पतंग (हरितः) हरा (तडिद्गर्भः) जिस के भीतर बिजली रहतीहै ऐसा मेघ (ऋतवः) छः ऋतुएँ (समुद्राः) समुद्र (त्वं)

तू (असि) है (अनादिमत्) आदिरहित (विभुत्वेन) व्यापक रूप से (वर्त्तसे) वर्त्तता है (यतः) जिस में (विश्वाः-विश्वानि) सकल (भुवनानि) भुवन (जातानि) उत्पन्न हुएहैं ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-नयनानन्दकर नीले पतंगा, मनको मोहनेवाले हरे २ तोते आदि पक्षी बिजली की चमकरूप नेत्रवाली रमणीय मेघ-माला, नवीन जीवन की देनेवाली उल्लासभरी वसन्त आदि ऋतुएँ और अनन्त अगाध समुद्र यह सब तुम ही हो, तुम्हारे ही प्रकारों का भेद है, तुम्हारी आदि नहीं है और इन सकल भुवनों की सत्ता तथा आदि कर्त्तापन आपमें विराजमान है अर्थात् तुम स्वयं अनादि होकर भी जगत् की आदि रूप से विराजते हो, तुम्हारी अचिन्त्य शक्तिकी समीपता से कार्य

कारण की अवस्था हुई है, अनादिकारण तुम अनादिमान् भुवनों के कर्त्ता हो, तुम सर्वव्यापक रूप से सदा सर्वत्र वर्तमान रहते हो, क्योंकि-यह सकल भुवन तुम से ही उत्पन्न होते हैं, और तुम्हारा व्यक्त होना ही इस विश्व के प्रकट होने का आदि कारण है ॥

विशेषार्थ—चंचल मनोहर पतंगे (उडने वाले कीडे) कानों को आनन्द देनेवाले सुकण्ठ शुक सारिका आदि पक्षी तुम्हारा ही अंश हैं, तुम्हारी दयाके झरने के परम शीतल जलकण हैं, सघन श्याम मेघमाला की गोद में हास्यमयी सौदामिनी का नाच आप की ही विभूति है, पृथ्वी के रत्न जड़े गहनों की समान पुष्प और परम गन्ध से महकनेवाली वसन्त आदि ऋतुएँ तुम्हारी ही महिमा की छाया है, सुनील विशाल अनन्त समुद्र तुम्हारे ही समुद्र का

दूसरा रूप है, इस जगत् में जो कुछ सुन्दर है जो कुछ प्रीतिमय है, जो कुछ प्रेम का आधार है वह सब तुम्हारा ही अंश है, तुम स्वयं नित्य सुन्दर, शान्त निर्मल हो इस कारण तुम्हारे अंश से उत्पन्न हुए पदार्थ भी तैसे ही हैं । हे नाथ! तुम ने स्वयं ही कहा है--"यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तदेवावगच्छ त्वं ममतेजोंशसम्भवम्" (इस धराधाम में जो कुछ श्रीमान् है, जो कुछ विभूतिमान् है, या जो कुछ प्रतिभा वाला है वह मेरे ही अलंध्य तेज के अंश से उत्पन्न हुवा है) हम दृष्टिहीन हैं, विवेकहीन हैं, इस कारण ही सकल भूतों में विराजमान आपकी विराट् सत्ता का दर्शन वा उस को मन में धारण नहीं कर सकते हैं तुम हमारे नयन २ में नयन को रखकर क्रीडा करते हो परन्तु हम देख नहीं पाते हैं । जिस समय

अन्धकारमय माता के गर्भ में अजान हुवा सो रहा था उस समय तुम ने ही मातारूप से अपने परम कोमल स्नेह से सिंचित अंचल में मुझ को स्थान दिया था, तब से अब तक तुम ही रक्षा करते चले आरहे हो और हे निरंजन! तुम ही शुक-पिक-पतङ्गादि-चन्द्र-तारे-चांदनी आदि तथा बिजली मेघमाला और शरद वसन्त आदिके द्वारा हमारे हृदयका रंजन करते हो ॥ ४॥

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाम्। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥ ५॥

अन्वय और पदार्थ—(हि) निश्चय करके (एकः) एक (अजः) शाश्वत पुरुष (लोहि-

तशुक्ल कृष्णाम्) तेज-जल अन्नरूपिणी वा सत्त्व रजः-तमः-रूपिणी (बह्वीः) बहुत सी (प्रजाः) प्रजाओं को (सृजमानाम्) रचती हुई (सरूपाम्) विकाररहित (एकाम्) एक (अजाम्) प्रकृति को (जुषमाणः) सेवा करता हुवा (अनुशेते) भजता है (अन्यः) दूसरा (अजः) साक्षीपुरुष (भुक्तभोगाम्) विषय भोगसे चरितार्थ हुई (एनाम्) इसको (जहाति) त्यागता है ॥ ५ ॥

(भावार्थ) अनादि आत्मा, अग्नि, जल और अन्नरूपिणी अथवा सत्त्व-रज और तमो-गुणवाली, अनन्त प्रजा को उत्पन्न करनेवाली, विकार शून्य, एक अनादि प्रकृति को सेवन करता है और भोगकी लालसारहित दूसरा साक्षी पुरुष (आत्मा) इस विषय-भोग में चरितार्थ प्रकृति को त्यागता है।

अर्थात् प्रकृति के स्वाभाविक इच्छित भोग के अन्त में तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होजाने पर वह जड़ी हुई विषयों की आसक्ति दूर होजाती है॥

(विशेष व्याख्या)प्रकृतिऔर पुरुष (आत्मा) यह दोनों ही अनादि हैं। शरीर और इन्द्रि-यादि विकार तथा सत्त्व,रज,तम यह सब प्रकृति से ही उत्पन्न हुए हैं। कार्य कारण और उनके कर्त्तापने का हेतु भी प्रकृति ही है। पुरुषमात्र सुख दुःख भोगने का हेतु है, क्योंकि पुरुष प्रकृतिगत होकर प्रकृति से उत्पन्न हुए सब गुणों को भोगता है, जब आत्मप्रकृति में स्थित होकर गुणों से युक्त होता है उस समय 'मन' उपाधि को स्वीकार करके सुख दुःख आदि को भोगता है और जीवरूप से अनेकों प्रकार की ऊँची नीची योनियों में प्रकट होता है।

आत्मा अर्थात् पुरुष ही 'मन' रूप से सकल योग्य विषयों को भोगता है फिर जब क्रम २ से भोग की लालसा क्षीण होकर 'मन' उस उपाधि से दूर होजाता है तब फिर भोग आदि का अनुभव कुछ नहीं होता है। भोगी आत्मा और भोगशून्य आत्मा यह लौकिक नाम दूर होकर दोनों एक होजाते हैं। यही बात गीता के १३ अध्याय में १९ श्लोक से २२ श्लोक तक कही है ॥ ६ ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥

अन्वय और पदार्थ-(द्वा द्वौ)दो(सयुजा सयुजौ) एक साथ विहार करनेवाले (सखाया सखायौ) सखा भाववाले (सुपर्णा सुपर्णौ) पक्षी (समा-

नम्) एक (वृक्षम्) शरीररूप वृक्ष को (परि षस्वजाते) आश्रय बनाकर रहते हैं (तयोः) उन में (अन्यः) एक (स्वादुः) मीठे (पिप्पलम्) फलको (अत्ति) खाता है (अन्यः) दूसरा (अनश्नन्) भोग न करके (अभिचाकशीति पश्यति) देखता है ॥ ६ ॥

(भावार्थ) परस्पर मित्रतावाले, निरन्तर एक साथ विहार करनेवाले जीव और ईश्वर रूप दो पक्षी देह रूप वृक्ष पर एकत्र बैठे हैं, उन दोनों में जीव रूप पक्षी मीठे फल—अर्थात् पहिले २ मीठे मालूम होनेवाले विषयरूप फल को भक्षण करता है, और ईश्वररूपी दूसरा पक्षी फल को भक्षण न करके साक्षी की समान इस जीवनामक पक्षीके भक्षणके व्यापार क्रिया आदिको देखता है। जीवरूप पक्षी अनुरक्त, लिप्त और भोगमें आसक्त है और ईश्वरनामक

पक्षी आसक्तिरहित, निर्लेप और भोगकी लालसासे रहित है । जीव अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही देह में विराजमान रहतेहैं। इन में जीवात्मा भोग में तत्पर रहता है और परमात्मा भोग आदि से रहित रहता है साधारण रूप से मन में यह तर्कना उठसकती है कि-दुःखादि क्लेशमय देह में रहकर भी परमात्मा निर्लिप्त वा दुःखमय आदि के अनुभव से रहित हो यह कैसे होसकता है ? इस में भी तो आधार आधेयता होने से एकका गुण दूसरे में जाना चाहिये ? परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है, यहां हम भगवान्के वाक्यका स्मरण करने से ही वास्तविक तत्त्व पा सकते हैं, भगवान् गीता में कहते हैं–

" अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोप लिप्यते । सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोप लिप्यते ॥ यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः । क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत" ॥ ६ ॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः । जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(पुरुषः) जीव (समाने) एक (वृक्षे) वृक्ष पर (निमग्नः) आसक्त हुवा (अनीशया) शक्ति हीनता करके (मुह्यमानः) मोहित होता हुआ (शोचति) शोक करता है (यदा) जब (अन्यजुष्टम्) तत्त्वनिष्ठों करके सेवा किये हुए (ईशम्) परमात्मा

को (अस्य) इसके (इति) इस (महिमानम्) महिमा को (पश्यति) देखता है (वीतशोकः) शोकरहित (भवति) होता है ॥ ७ ॥

(भावार्थ) पुरुष अर्थात् देह के भीतर रहने वाला जीव, देहरूप वृक्षको ही अपना प्रधान अवलम्बन मानकर अपनी अज्ञानता और शक्तिहीनता के कारण मूढ हुआ निरन्तर शोक करता है और जब तत्त्वज्ञानियों से सेवित परमात्मा की ओर और उस की विश्वव्यापी अखण्ड महिमा की ओर को दृष्टि डालता है तब उसकी भ्रांति दूर होजातीहै॥७॥

ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य एतद्विदुस्त इमे समासते ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अक्षरे) अविनाशी (परमे) परमोत्तम (व्योमन्, व्योम्नि) आकाशपदवाच्य परमात्मा में (विश्वे) सकल (देवाः) देवता (ऋचः) ऋचाएँ (अधिनिषेदुः) आश्रय करके रहीं (यः) (तम्) उसको (न) नहीं (वेद) जानता है (ऋचा) ऋचा से (किम्) क्या (करिष्यति) करेगा (ये) जो (इति) इस प्रकार (तत्) उस को (विदुः) जानते हैं (ते) वह (इमे) यह (समासते) आनन्दात्मस्वरूप सर्व व्यापी हो जाते हैं ॥ ८ ॥

(भावार्थ) ऋग्वेद आदि सब वेद, उस अविनाशी, व्यापक, परमोत्तम, अनवच्छिन्न और नित्य शुद्ध परमात्मा का ही आश्रय करके रहते हैं, तीनों वेदों में एक उस चित्स्वरूप

परब्रह्म का ही प्रतिपादन है, जिस परमात्मा में सब देवता समष्टि और व्यष्टिभाव से आश्रय करके रहते हैं, वेद जिस की दिव्य ज्योति के प्रकाशित होने का स्थल हैं, उस सब वेदों के द्वारा जानने योग्य परात्पर परमात्मा को न जानकर उस के स्वरूप को जानने से उदासीन होकर जो पुरुष अप्रविष्टभाव से और अनजान दशा में केवल कर्म लिप्सा के वश में होकर वेद आदि का उच्चारण करते हैं उन सपेरों की समान अर्थहीन भाषण करनेवाले पुरुषों को ऋचादि वेदों के पढ़ने का कुछ फल नहीं होता है, उनका वेदपाठ व्यर्थ है और जो वेद विधि के अनुसार परमात्मा को मनोराज्य के सिंहासन पर बैठाकर उसका ध्यान करते हैं, वह ही वास्तविक आनन्द पासकते हैं उन का वेदपाठ यथार्थ में वेदपाठ है, इस उपदेश की ओर भी

दो एक प्रकार की व्याख्या होसकती हैं जो कि--विस्तार के भय से नहीं लिखी गई॥

(विशेष व्याख्या)--वेद परमात्मा की विभूति है, उस में परमात्मा की प्राप्ति का उपाय और उस के स्वरूप को जानने की रीति आदि वर्णन की गई है, ऊपर के मंत्रों में कहागया है कि--परमात्मा के कीर्त्तन और श्रवण से आत्मसाक्षात्कार होता है, अब उस कीर्त्तन आदि का प्रकार कहते हैं कि जिस की कथा का चिन्तवन करने से जीवन निष्कलंक होता है, जीवन की भ्रान्ति दूर हो जाती है उस सकल भ्रान्तियों के हरनेवाले परम पुरुष का जब चिन्तवन वा कीर्तन किया जाता है उस समय यदि साधक उस के विषय में सर्वथा अनजान रहे, तो उस अर्थहीन चिन्तवन या कीर्तन का कुछ फल नहीं

होता है विना अर्थ को जाने सांप के मंत्र की समान वेदमन्त्र के उच्चारण से भी पाप का नाश नहीं होता है और गानजनित अपूर्व आनन्द के पाने का अधिकारी नहीं होता उस के चरणों में मन प्राण अर्पण करके श्रद्धा के साथ जो उस की उपासना करता है वह ही वास्तविक अनुपम आनन्द पाने का अधिकारी और परमात्मा का परम प्यारा है, इसी लिये भगवान् ने स्वयं कहा है ॥ "मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते। श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥" सार वात है ज्ञान, जिस समय जो कुछ करो। ज्ञान पूर्वक करो, अज्ञान भरे हृदयमें भावना से रहित होकर चाहे कोइ काम करो उस में सकल मनोरथ नहीं हो सकते, अतः कर्म करो, परन्तु बुद्धिका आदि कारण समाधि,

है । इसलिये समाधिका अवलम्बन करो, समाधिहीन क्रियाका फल पुष्पहीन लता की समान है, उस क्रिया का फल केवल शारीरिक और मानसिक श्रम ही है और कुछ नहीं है ॥ ८ ॥

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति । अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(छन्दांसि) वेद (यज्ञाः) यज्ञ (क्रतवः) यज्ञ (व्रतानि) व्रत (भूतम्) व्यतीत (भव्यम्) भविष्यत् (च) और (यत्) जो वर्तमान है (वेदाः) वेद (वदंति) कहते हैं (अस्मात्) इस ब्रह्मसे (समुत्पद्यते) उत्पन्न होता है (मायी)

मायारूप उपाधि से युक्त हुआ (एतत्) इस (विश्वम्) विश्व को (सृजते) उत्पन्न करता-है (च) और (तस्मिन्) तिस में (अन्यः इव) अन्य की समान (मायया) माया करके (सन्निरुद्धः) बँधा हुआ (भ्रमति) भ्रमता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ) परम देव परमेश्वर अपनी मायाशक्ति के द्वारा, धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप पुरुषार्थों का वर्णन करनेवाले वेद वेद में वर्णन कियेहुए अग्निष्टोम आदि यज्ञ, चान्द्रायण आदि व्रत यागादि साध्यभूत भविष्यत वर्तमानरूप काल, इस सब जगत् को रचकर अपनी मायाशक्ति के विवर्तस्वरूप समष्टि और व्यष्टिमय कार्यकारणरूप उपाधि में, जल में चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब की समान प्रवेश करके, वास्तव में निर्लिप्तभाव से, अविद्या से उत्पन्न हुए काम्य कर्म

आदिके द्वारा बँधकर जीव नामको पाता है, इस बात को प्रगट करने के लिये ही यह मंत्र लिखा गया है। जिसका प्रमाण वेदों में है ऐसा यह सम्पूर्ण जगत् अविनाशी विकाररहित अक्षर ब्रह्म से उत्पन्न होता है। अविकार अक्षर ब्रह्म से क्षर और विकारयुक्त जगत् कैसे उत्पन्न होगया ? इस सन्देह को दूर करने के लिये कहते हैं कि वह माया को स्वीकार करके इस विश्व की रचना का व्यापार करता है, इस जगत् में अपनी माया के पाशसे बँधकर वह परम पुरुष ही जीव नाम को धारण करताहुआ दूसरे की समान अर्थात् ब्रह्मसे जुदासा, जीवरूप में अविद्या के वशीभूत होकर अपनी माया के रचे हुए संसारसमुद्र में घूमता है। नदी की तरंगों में प्रतिबिम्बित हुए चन्द्रमाकी समान इस जगत में प्रतिनियत

रूपसे अनुमान में आता हुआ भी यह विश्व-नाथ वास्तव में जगत् से निर्लिप्त है तथापि अविद्यारूप पारे से ढके हुए विश्वरूप दर्पण में उस का प्रतिबिम्ब पड़ता है, यह सत्य है, परन्तु वह वास्तव में दर्पण में दीखनेवाले पदार्थ-की समान विश्व से सर्वथा अलग है, यही भगवान् ने गीता में कहा है "प्रकृतिं स्वामवष्ट-भ्य विसृजामि पुनः पुनः॥ भूतग्राममिमं कृत्स्न-मवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय । उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु" ॥ ९ ॥

मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् । तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥१०॥

अन्वय और पदार्थ-(मायाम् तु) माया को तो (प्रकृतिम्) प्रकृति (मायिनम्-तु) मायावाले को तो (महेश्वरम्) महेश्वर (विद्यात्) जानै (तस्य) तिस के (अवयवभूतैः) मायामय अवयवों के द्वारा (इदम्) यह (सर्वम्) सब (जगत्) संसार (व्याप्तम्) व्याप्त है ॥ १० ॥

(भावार्थ)-जिस महामाया में आत्मस्वरूप को देकर वह बडी महिमावाले परमपुरुष इस जगत् को रचते हैं, उस मायाका ही प्रकृति नाम जानो और उस ही परमा माया वा परमा प्रकृति के वशीभूत हुए को महेश्वर अर्थात् परमेश्वर नाम से कहो, उस की मायारूपी कैंचुली से ढके हुए अवयव के द्वारा अर्थात उस महापुरुष की माया से जडे हुए अवयव-स्वरूप जीव के द्वारा यह सकल संसार व्याप्त

होरहा है । मायामय जीव की आत्मानुवृत्ति के साथ यह जगत् लिपट रहा है, यही बात भगवान् गीता में कहते हैं कि "मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् । हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्त्तते ॥ १० ॥

योयोनिं योनिमधितिष्ठत्येको यस्मिन्निदं संविचैति सर्वम् । तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (एकः) एक (योनिं-योनिम्) हरएक कारण में (अधितिष्ठति) अधिष्ठान होकर रहता है (यस्मिन्) जिस में (इदम्) यह (सर्वम्) सब (समएति) अन्तकाल में प्रलय को प्राप्त होता है (च) और (वि-एति-च) अनेकों रूपों

से प्रकाशित भी होता है (तम्) उस (ईशानम्) नियन्ता (वरदम्) मोक्षदाता (ईड्यम्) पूजनीय (देवम्) परमपुरुषको (निचाय्य) निश्चय के साथ साक्षात् करकै (इमाम्) इस (शान्तिम्) शांति को (अत्यन्तम्) पुनरावृत्तिरहित (एति) पाता है ॥११॥

(भावार्थ) जो अद्वितीय, दिव्य, परमपुरुष जगत् के मायामय प्रत्येक कारण में अन्तर्यामी रूप से स्थित रहता हैं, माया के अधिष्ठाता जिस परम पुरुष में यह सकल ब्रह्माण्ड प्रलय-काल में विलीन होजाता है और सृष्टिकाल में फिर अनेकों प्रकार के आकारों को धारण-करकै प्रकाशित होता है। तिस सर्वान्तर्यामी विश्वनियन्ता, मोक्षदाता, वेदादिपूजित, सच्चिदानन्दमय परमेश्वर को निश्चयरूप से वह ही मैं हूँ, ऐसा प्रत्यक्ष करसकने पर साधक सब

प्रकारके दुखोंसे छूट, निरन्तर सुखस्वरूपिणी चिरकालीन शान्ति को पाजाता है उस को फिर संसार के दुःख नहीं भोगने पड़ते हैं। प्रलयकालमें फिर यह अनन्त ब्रह्माण्ड उस आदिकारणमें ही जाकर लीन होजाता है। कहीं कहा भी है "संहृत्य सर्वभूतानि कृत्वा चैकार्णवं जगत्। बालः स्वपिति यश्चैकस्तस्मै कृष्णात्मने नमः" ॥ अर्थात् सकल भूतों को अपने में समेटकर और जगत् को समुद्ररूप बनाकर जो बालकमूर्ति परमदेवता शयन करताहै, उस कृष्णात्माको नमस्कार है ॥ ११ ॥

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च, विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः । हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानम्, स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः)जो (देवानाम्) देवताओंका (प्रभवः) शक्तिका कारण (च) और (उद्भवः) उत्पत्तिस्थान (विश्वाधिपः) विश्व का स्वामी (रुद्रः) रुद्र(च) और(महर्षिः) सर्वज्ञ शक्तिकाकारण है(हिरण्यगर्भम्)हिरण्यगर्भ (जायमानम्) होतेहुए को (पश्यत) देखो (सः) वह (नः) हम को (शुभया (हित-कारणी (बुद्ध्या) बुद्धिसे (संयुनक्तु) संयुक्त करे ॥ १२ ॥

(भावार्थ) जो अनन्तशक्ति, परम महिमा-वाला पुरुष शक्तिवाले देवताओं की भी शक्ति-का कारण है, जो जगत् का अद्वितीय स्वामी सर्वज्ञ और जगत् का संहर्ता है, हे मुक्ति के चाहनेवालो ! तुम उस सनातन पुरुष को ही देखो, अपने में उसकी सत्ता को देखकर कृतार्थ

होओ, वह हम को मोक्षविषयिणी शुभ बुद्धि देय ॥ १२ ॥

यो देवानामधिपो यस्मिँल्लोका अधिश्रिताः । ईशेऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (देवानाम्) देवताओं का (अधिपः) स्वामी है (यस्मिन्) जिस में (लोकाः) भूआदि लोक (अधिश्रिताः) आश्रय करके रहते हैं (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) दो चरणवाले प्राणिसमूह को (चतुष्पदः) चार चरणवाले प्राणिसमूह को (ईशे) ऐशी शक्ति से चलाता है (कस्मै) किसी आनन्दरूप (देवाय) देव के अर्थ (हविषा) यजन के पदार्थों के द्वारा (विधेम) सेवा करेंगे ॥ १३ ॥

(भावार्थ) जो परम ऐश्वर्यवाला परमेश्वर ब्रह्मादि देवताओं का भी स्वामी है, सकल-ब्रह्माण्ड जिस की अनन्त सत्ता के आधार से ठहराहुआ है, क्या दो चरणवाले मनुष्यादि और क्या चार चरणोंवाले पशु आदि सब ही प्राणी जिस सर्वनियन्ता के अपूर्व नियम में बँधेहुए हैं, उस चिदानन्दमय परमदेवता को परमपवित्र यज्ञ के चरुपुरोडाशादि के द्वारा सेवा करैंगे ॥

(विशेष व्याख्या) यज्ञ करने पर जिस को कि—मेरा कहा जासकता है, वह सब उस यज्ञ में उस के अर्पण करके अर्थात् सर्वस्व उस के निमित्त उत्सर्ग करके मैं रातदिन उस की सेवा में ही लगारहूँगा, यही इस श्रुति का तात्पर्य है, कुछ अधिक विचार करने पर इस श्रुति में कुछ और भी मधुरता मिलती है।

अनन्त शक्तिशाली अचिन्त्यप्रभाव देवता पर्यन्त जिस के अधीन हैं, सब संसार जिस की विराट सत्ता के आश्रय से रहता है, जगत् के सकल जीव ही जिसकी आज्ञा में हैं आनन्द जिस की मूर्ति है, सत् जिस का स्वभाव है, और ज्योति अर्थात् विश्व प्रकाशिका कान्ति जिस की सत्ता है, उस को यदि मैं अपना सर्वस्व अर्पण करसकता हूँ, शरीर मन वाणी से यदि उस का दासभाव स्वीकार करके निरन्तर उस के ध्यान में ही मग्न होकर रहसकता हूँ तो जगत् में मेरी समान सौभाग्य वान् कौन है ? जिस के अक्षय अनन्त भण्डार में किसी भी बात की कमी नहीं है, उस को सर्वस्व समर्पण कर के यदि (मेरा है, ऐसा कहकर पकडसकूँ तो मुझ को दुःख ही क्या रहै, जिस महोच्च पुरुष से निरन्तर अप्रमेय

आनन्द का झरना बहता रहता है, यदि उस सदा आनन्द निकेतन के चरणों में मन और प्राणों का बलिदान करसकूँ तो मुझ को कमी ही क्या रहे ? आनन्दके लिये ही जगत् तडफड़ाता फिरता है, केवल आनन्द के लिये ही तत्काल उत्पन्न हुआ बालक माता के दूध को चाहता है, केवल आनन्द के ही लिये माता पुत्र को प्राण समझकर पालती है, केवल आनन्द के ही लिये पत्नी पति को चाहती है, केवल आनन्द के लिये ही अवस्था को प्राप्तहुआ पुरुष स्त्री की चाहना करता है केवल मनुष्य ही नहीं पशु पक्षी आदि की योनियों में भी निरन्तर आनन्द का ही स्रोत बहता है। इस कारण जब आनन्द ही जीवन का पाने योग्य प्रधान पदार्थ है, तब जिसके आश्रित होने से अपने इच्छित इस थोडे

आनन्द की अपेक्षा हम करोड़ों गुणा अधिक अपरिमित, अनन्तकाल स्थायी अपूर्व आनन्द पासकते हैं, जिस करुणामय की दयारूपी कल्पलता की छाया में संसारताप से झुलसे हुए शरीर को विश्राम दे सकने पर हृदय की असह्य यातना चिरकाल के लिये अंतर्हित होजायगी मैं आनन्द के कमनीय कोने में निद्रा ले सकूँगा, हाय ऐसे महिमा वाले पुरुष के चरणों में यदि आश्रय पाने की प्रार्थना न करूं तो मुझसा ढीठ आत्म द्रोही दूसरा और कौन है ! ऐसे सनातन आनन्द स्वरूप शक्तिमान् स्वामी के चरणों में किसी समय भी यदि अहंकार को छोडकर सर्वस्व की अंजलि अर्पण न करूँ तो मुझसा अभागा और कौन होगा। सामने निर्मल जलवाली पवित्र गंगा बह रही है, तुम यदि उसमें गोता न लगाओ

तो कहो तुमसा पाखण्डी तुमसा हृदय हीन दुरदृष्ट पुरुष और कौन होगा इसी लिये अनुभवी साधक कहता है कि—मेरा सर्वस्व यज्ञकी सामग्री की समान उस परमदेवता के चरणोंमें अर्पित है और मैं निरन्तर उसका ही ध्यान करूँगा ॥ १३ ॥

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम। विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सूक्ष्मातिसूक्ष्म) सूक्ष्मसे भी परम सूक्ष्म (कलिलस्य) अविद्या और अविद्याजनित (अतीत) दुर्गम गहनके (मध्ये) मध्य में (वर्त्तमानम्) वर्त्तमान (विश्वस्य) विश्व के (स्रष्टारम्) रचनेवाले

(अनेकरूपम्) अनेकों रूपवाले (विश्वस्य) विश्व के (एकम्) एक (परिवेष्टितारम्) परिवेष्टन करनेवाले (शिवम्) मंगलस्वरूप को (ज्ञात्वा) जानकर (साधकः) साधक (अत्यन्तम्) अत्यन्त (शान्तिम्) शान्ति को (एति) प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

(भावार्थ)–जो सूक्ष्मसे भी परम सूक्ष्म है, साक्षीरूपसे जो निरन्तर प्रकृति के परम गहन कार्यों में स्थित रहता है, जिसकी प्रभुता के विना प्रकृति का कोई कार्य सिद्ध नहीं होसकता, सकल पदार्थों का उत्पन्न करनेवाला, उपादान, उपादेय और निमित्त नैमित्तक आदि भेदोंवाला है अतएव अनेकों रूपों से जगत् के अद्वितीय परिवेष्टयिता अर्थात् सर्वत्र व्यापक उस मंगलों के महान् भण्डार को जानलेने पर साधक चिरकाल को शान्ति

पासकता है। वह प्रभु होकर प्रकृति के कार्यों को देखता है, यही बात गीतामें भी कही है "मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्त्तते" ॥ १४ ॥

स एव काले भुवनस्य गोप्ता विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः। यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च तमेवं ज्ञात्वामृत्युपाशांश्छिनत्ति ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (एव) ही (काले) समय पर (अस्य) इस (भुवनस्य) जगत् का (गोप्ता) रक्षक (विश्वाधिपः) विश्वपति (सर्वभूतेषु) सकल भूतों में (गूढः) स्थित (यस्मिन्) जिस में (ब्रह्मर्षयः) ब्रह्मर्षि (च) और (देवताः) देवता (युक्ताः) एकता

को प्राप्त हुए हैं (तम्) उस को (एवम्) इस-प्रकार (ज्ञात्वा) जानकर (मृत्युपाशान्) अविद्या के बन्धनों को (छिनत्ति) काटता है ॥ १९ ॥

(भावार्थ)-वह परम देवता परमेश्वर जिस को कि ऊपर की श्रुतियों में सकल का-यों का साक्षी कहागया है, जीव के सञ्चित कर्मों का फल भोगने के समय इस विश्व की कर्मानुसार रक्षा करता है, वही जगत् का अद्वि-तीय स्वामी है, ब्रह्मा से लेकर वृक्षादि पर्यन्त सकल ही पदार्थों में वह साक्षीरूप से स्थित रहता है, जिस परमपुरुषमें सनकादि महर्षि और ब्रह्मादि देवता एकता को पाकर अर्थात् ' मैं वह ही हूँ ' ऐसा प्रत्यक्ष करके वा योग के आश्रय से जिसमें समाधि लगाकर रहते हैं उस आब्रह्मस्तम्ब पर्यन्त सबकी आश्रयभूमि

को, उस अविनाशी करुणा निधान को 'मैं वह ही हूँ' इसप्रकार हृदयंगम करसकने पर साधक, अविद्या महा मोह आदि संसार के दृढ़ बन्धनों को काट सकता है, उस को फिर निरन्तर अविद्या की परम कठोर जंजीर से नहीं पिसना पडता है ॥

(विशेष व्याख्या)--हम अपनी जिस दशा को मृत्यु कहते हैं वह वास्तव में मृत्यु नहीं है जो अविद्या से नहीं छूटता है वह जीवित भी मृतक-की समान है, श्रुति में इस महामोह गाढतम का नाम ही मृत्यु कहा है, श्रुति कहतीहै--मृत्युर्वै तमः' तम ही मृत्यु है, इस तम के विनाश नाम ही मृत्यु विनाश है, मायाविनी अविद्या के महा अन्धकार में आत्मस्वरूप को भूलकर जीव हृदय में घबडाया हुआ वासनाओं को पूरी

करने के लिये लंबे २ श्वास लेता हुआ इधर उधर घूमता फिरता है, अविद्यान्धकार से उत्पन्न हुई इस वासना को नष्ट करने का एक मात्र उपाय ईश्वर का चिन्तवन वा भगवान् में परम प्रीति करना है। भगवान् के चरणों के नखोंकी किरणों की चित्तानन्ददायक दीप्ति से जो हृदय दमक रहा है, उस हृदय में, अविद्यारूप निशाचरी की अन्धकार भरी वासना की छाया कभी भी प्रवेश नहीं कर सकती। स्वर्ग की चांदनी के सामने क्या नरक का अन्धकार स्थान पासकता है !। इसी बात को श्रुति कहती है कि-यदि हृदय में अशान्ति करने-वाली अविद्या के कराल कवल से रक्षा पाना चाहते हो तो उस सर्वशक्तिमान् का ध्यान करो उसकी दिव्य विभूतियों को अपने ऊपर हृदय-में धारण करनेका अभ्यास करो, नहीं तो

अविद्या के खड्गहस्त कठोर कर से निस्तार पाने का और दूसरा उपाय नहीं है॥ १५॥

घृतात्परं मण्डनमिवातिसूक्ष्मं ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम्। विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥ १६॥

अन्वय और पदार्थ--(घृतात्) घृत से (परम्) ऊपर (मण्डनम्-इव) सार की समान (अति सूक्ष्मम्) परम सूक्ष्म (सर्वभूतेषु) सकल प्राणियों में (गूढम्) गुप्तरूप से स्थित (शिवम्) मङ्गलरूप (विश्वस्य) विश्व के (एकम्) एक (परिवेष्टितारम्) सब ओर व्यापक (देवम्) देव को (ज्ञात्वा) जान कर (सर्वपाशैः) सकल बन्धनों से (मुच्यते)छूटजाताहै॥१६॥

(भावार्थ) घृत के ऊपर विद्यमान अति सूक्ष्म सारभाग की समान जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, ब्रह्मसे लेकर परम क्षुद्र तृण पर्यन्त प्रत्येक पदार्थ में जिसकी दिव्य विभूति पूरी हुई है निरन्तर मङ्गलमय उस जगत् के अद्वितीय परिव्यापक परमदेव आत्मा के साथ अभिन्नभावको जान जाने पर साधक अति कठिन से कटनेवाले संसार बन्धनों से छूट जाता है; उसके जीवन के शान्ति मार्ग की सकल विघ्न बाधाएँ सदा को दूर होजाती हैं ॥ १६ ॥

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः । हृदये मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ--(एषः) यह (देवः) देव (विश्वकर्मा) विश्वका कर्त्ता (च) और (महात्मा) सर्वव्यापी (सदा) सदा (जनानां) प्राणियों के (हृदये) हृदय में (सन्निविष्टः) स्थित (हृदा) बुद्धि करके (मनीषा) विवेकबुद्धि के द्वारा (मनसा) विचार से पवित्र ज्ञान के द्वारा (अभिक्लृप्तः) प्रकाशित [भवेत्] हो (ये) जो (एतत्) इसको (विदुः) जानते हैं (ते) वह (अमृताः) अमर (भवन्ति)होते हैं ॥ १७ ॥

(भावार्थ) विश्वका आदिकर्ता वह सनातन पुरुष सदा सर्वत्र व्यापक रहता है जीव का हृदय क्षणभर को भी उस के अधिष्ठान से अलग नहीं होता, वह निरन्तर सब जीवों के अन्तःकरणों में स्थित रहता है, विवेक से

मँजी हुई बुद्धि यहां नहीं यहां नहीं इसप्रकार सकल विषयों में तत्त्व देखनेवाली बुद्धि और आत्मविचार से पवित्र हुए ज्ञान के द्वारा उस को अपने २ हृदय में पाया जासकता है जो इन कठिन से करने योग्य साधनाओं की सहायता से उस को जानसकते हैं वह अमरपद पाकर तृप्त होते हैं, उन के संसार के दुःख सदा को दूर होजाते हैं, उन के मन में अनन्त शान्ति भरजाती ॥ १७ ॥

यदाऽतमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्न चासच्छिव एव केवलः । तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं, प्रज्ञा च तस्मात्प्रसृता पुराणी ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यदा) जब (अतमः) अज्ञान का नाश (भवति) होता है

(तत्-तदा) तब (दिवा) दिन (न) नहीं (भवति) होता है (रात्रिः) रात (न) नहीं (भवति) होती है (सत्) कारण (न) भवति) होता है (च) और (असत्) कार्य (न) नहिं (भवति) होता है (केवलः) केवल (शिवः) मङ्गलमय (प्रकाशते) प्रकाशित होता है (तत्) वह (अक्षरम्) अविनाशी हैं (तत्) वह (सवितुः) सविता देवता है (वरेण्यम्) भजनीय है (च) और (तस्मात्) तिस से (पुराणी) प्राचीन होनेपर भी सर्वदा एकरूप रहनेवाले (प्रज्ञा) आत्मविद्या (प्रसृता) निकली है ॥ १८ ॥

(भावार्थ– जब अज्ञान की निवृत्ति होकर परमनिर्मल ज्ञान का प्रकाश होता है, उस समय क्या दिन, क्या रात, क्या कारण, क्या कार्य कुछ भी कल्पना नहीं रहती है। जितनी

अविद्या है सब ही अज्ञान से फैलीहुई है, उस अविद्या का नाश होने पर उस के कार्यों का भी नाश होजाता है, उस समय यह जानने वाला है, यह जाननेयोग्य है, इस प्रकार के भेद से रहित, निर्विकार, चित्स्वरूप अविद्या से न छुए हुए, ज्ञानमय आनन्दज्योति का ही जहाँ तहाँ प्रकाश होता है, वह प्रसिद्ध, ज्ञानमय, परमज्योति, सबप्रकार के परिच्छेद से शून्य सकल प्राणियों की जनक है। परमध्येय सविता देवता भी उसका भजन करते हैं, उससे ही परम प्राचीन होने पर भी सदा एकसी नवीन रहनेवाली 'मैं ही ब्रह्महूँ' इसप्रकार की नवीना अध्यात्म विद्या निकलीहै; वह ही सब प्रकार के विकल्पों का एकमात्र दूर करनेवाला है, उस को जानलेने पर सकल विकल्प दूर होजाते हैं, यह जिस अवस्था का वर्णन है

उस समय किसी प्रकार की कल्पना नहीं रहती है, यही बात और श्रुतियों में भी कही है, यथा "नासदासीन्नो सदासीत्तमआसीदिति" १९

नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत। न तस्य प्रतिमा अस्ति, यस्य नाम महद्यशः॥ १९॥

अन्वय और पदार्थ—(कश्चित् अपि) कोई भी (एनम्) उस को (ऊर्ध्वम्) ऊपर (न) नहीं (परिजग्रभत्) ग्रहण करने को समर्थ होसकता है (मध्ये) मध्यमें (न) नहीं (परिजग्रभत्) ग्रहण करने को समर्थ हो सकता है (तस्य) उस की (प्रतिमा) उपमा (न) नहीं (अस्ति) है (यस्य) जिस का (महत्) सब से बड़ा (यशः) यश (नाम) प्रसिद्ध है ॥ १६ ॥

(भावार्थ) उस कूटस्थ ब्रह्म को क्या ऊपर क्या नीचे और क्या मध्य में, कहीं भी कोइ

ग्रहण नहीं करसकता; तब उसको किस प्रकार जाना जाय ! उस का स्वरूप कैसा है इस के उत्तर में कहते हैं कि-उस की उपमा नहीं है इसी कारण वह अमुक पदार्थ की समान है, ऐसा नहीं कहा जासकता, तब वह कैसा है। किस प्रकार उस को जानें ? इस के उत्तर में कहते हैं जिस का सब से अधिक प्रसिद्ध यश विश्व के सकल पदार्थों में विराजमान है, जगत् की सब ही वस्तु जिस की कीर्ति मेखला से भूषित हैं, उसको जानना हो तो पहिले सकल पदार्थों में उसकी कीर्ति सत्ता को ग्रहण करने का यत्न करो, सकल भूत भौतिक प्रपंच उस की सनातनी कीर्ति है। सावधान हृदय से देखने की चेष्टा करने पर हरएक पदार्थ में उस कीर्तिमान् की कीर्ति कौमुदी को देखकर प्राणी कृतार्थ होजाता है,

किन्तु सब की मूल समाधि है, समाधि से रहित होकर उसको पाने की आशा कभी नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् । हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्य) इसका (रूपम्) रूप (सन्दृशे) चक्षुआदि इंद्रियों से ग्रहण करनेयोग्य स्थान में (न) नहीं (तिष्ठति) स्थित होता है (कश्चन) कोई (एनम्) इस को (चक्षुषा) चक्षु से (न) नहीं (पश्यति) देखता है (ये) जो (एनम्) इस (हृदिस्थम्) हृदय में स्थित को (हृदा) शुद्ध बुद्धि के द्वारा (च) और (मनसा) मनन करने

वाले मन के द्वारा (एवम्) इस प्रकार (विदुः) जानते हैं (ते) वह (अमृताः) अमर (भवन्ति) होते हैं ॥ २० ॥

(भावार्थ) इस परमब्रह्म का विशेष स्वप्रकाश अखण्डानन्द स्वरूप, चक्षु आदि इंद्रियों के ग्रहण करने योग्य स्थान में नहीं रहता है, अर्थात् इसका स्वरूप इंद्रिय गोचर नहीं है इसको कोई चक्षु से नहीं देख सकता जो साधन चतुष्टयादियुक्त, योगके अधिकारी संन्यासी परमशुद्ध, समाधिसे मँजी हुई निर्मल बुद्धि और निश्चल मनके द्वारा हृदाकाश की गुहामें स्थित इस परम पुरुषको अहं ब्रह्माऽस्मि 'मैं ब्रह्म ही हूँ' इस भाव से जानसकते हैं अर्थात् प्रत्यक्ष करसकते हैं, वह उस प्रत्यक्ष करने की महिमा के बल से अमरभाव को पा जाते हैं, मरण की कारण अविद्या आदि

के तत्त्वज्ञानरूप अग्नि के द्वारा भस्म होजाने से इन ब्रह्म का साक्षात्कार करनेवालों को फिर जन्म लेकर शरीर धारण नहीं करना पड़ता है, पहिले कहा जाचुका है कि "तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" ॥ २० ॥

अजात इत्येवं कश्चिद्भीरुः प्रतिपद्यते। रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम् ॥ २१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(त्वम्) तू (अजातः) जन्म जरा आदि रहित है (इति-एवम्) ऐसा (कथयित्वा) कहकर (कश्चित्) कोई (भीरुः सन्) संसार से डरताहुआ (त्वाम्) एव, (शरणम्) आपकी ही, शरण (प्रतिपद्यते) प्राप्त होता है (रुद्र) हे रुद्र (यत्) जो

(ते) तुम्हारा (दक्षिणम्) उत्साहजनक (मुखम्) रूप है (तेन) उस करके (नित्यम्) सदा (माम्) मुझको पाहि रक्षा करो ॥ २१॥

(भावार्थ)–साधक, जन्म, जरा, भूख-प्यास, शोक, मोह, आदि अनन्त क्लेशों से भरे हुए संसार से भयभीत होकर उन क्लेशरूप धर्मों से रहित आप को एकमात्र अविनाशी आश्रयरूपसे प्राप्त होता है। हे अविद्या के नाशक रुद्र अपने निरन्तर आनन्दमय उत्सा-हजनक रूप से तुम सर्वदा हम को अविद्या के चुंगल का ग्रास होने से बचाइये, हृदय के भीतर आपकी अनुपम कान्तिका प्रकाश होकर मेरे मन के गाढ अन्धकार (अज्ञान-का) चिरकाल को नाश हो, तुम जरा, मरण आदि क्लेशदायक संसार के धर्मों से रहित हो, इसीकारण हे अविद्या का नाश करनेवाले रुद्र

देव ! मैं केवल आप का ही आश्रय करता हूँ, आप अपनी चिरोत्साहमयी मूर्ति का दर्शन कराकर मेरे जड़ताभरे जीवन में फिर उत्साह डालदीजिये ॥ २१ ॥

मानस्तोके तनये मा न आयुषि, मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान् मानो रुद्र भामिनो वधीर्ह-विष्मन्तः सदमित्वा हवामहे ॥ २२ ॥

अन्वय और पदार्थ--(रुद्र) हे रुद्र (त्वम्) तू (नः) हमारे (तोके) पुत्र में (तनये) पौत्र में (मा) मत (नः) हमारी (आयुषि) आयु में (मा) मत (नः) हमारी (गोषु) गौओं में (मा) मत (नः) हमारे (अश्वेषु) घोडों में (मा) मत (रीरिषः) हिंसा करो

(भामितः सन्) क्रोधित हुए (नः) हमारे (वीरान्) वीरों को (मा) मत (वधीः) हिंसाकरो (हविष्मन्तः) निरन्तर होम करतेहुए (वयम्) हम (सदमित्-सदा) सर्वदा (त्वा-त्वाम्) तुझ को (हवामहे) रक्षाके लिये बुलाते हैं ॥ २२ ॥

(भावार्थ)--हे रुद्र ! हे अनन्तशक्ते ! तुम हमारे पुत्र, पौत्र, जीवन, हवि की साधन गौ तथा घोडे आदि अन्यान्य शरीर धारियों का विनाश न करो, हम उद्धत होने पर भीं आपके सेवक हैं हे नाथ ! तुम अपने भृत्यों का प्राण संहार न करना हम सदा हवि आदि के द्वारा आपको अपनी रक्षा के लिये आह्वान करते हैं तुम हमारी रक्षा करो ॥ २२ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे अनन्ते विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढे । क्षरन्त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(द्वे) विद्या और अविद्या दो (तु) तौ (अक्षरे) अविनाशी (अनन्ते) अनन्त (ब्रह्मपरे) परब्रह्ममें वर्त्तते रहते हैं (यत्र) जिसमें (विद्याविद्ये) विद्या और अविद्या (निहिते) स्थापित (गूढे) अप्रकट [भवतः] होते हैं (अविद्या तु) अविद्या तो (क्षरम्) नाश का हेतु (विद्या तु) विद्या तो (हि) निश्चय (अमृतम्) मोक्ष का हेतु

[भवति] होती है (यः-तु) जो तौ (विद्या-विद्ये) विद्या और अविद्या को (ईशते) वश-में रखता है (सः) वह (अन्यः)और है॥१॥

(भावार्थ) नाशवान् कार्यों की जड, संसा-रवृत्तिकी कारण अविद्या और अमृतमयी आ-त्मज्ञानरूपिणी विद्या, यह दोनों ही अनादि अनन्त परब्रह्ममें लौकिक जगत् के अज्ञातभाव से स्थित हैं, जो महात्मा उस अज्ञान मूला अविद्या और संसारवृत्ति को दूर करनेवाली विद्या को वश में करसके हैं केवल वह ही उस दुःखभरी अविद्या और सुख की मूल विद्या से पृथक्भूत उस को संसार से भी सर्वथा पृथक् जानै, सुख वा दुःख कुछ भी उस को प्रसन्न वा खिन्न नहीं करसकता, वह वायुहीन स्थानमें रक्खे हुए दीपक की समान स्थिरचित्त

होकर द्वन्द्वातीत अवस्था को प्राप्त होता है " द्वन्द्वातीतो विमत्सरः । " यह नाम इस में ही घटसकता है ॥ १ ॥

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको विश्वा नि रूपाणि योनीश्च सर्वाः । ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानञ्च पश्येत ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (एकः) एक (योनिं-योनिम्) प्रत्येक योनिमें (अधि-तिष्ठति) अधिष्ठित होता है (विश्वानि) सकल (रूपाणि) रूपों को (विश्वाः) सकल (योनीः च) योनियों को भी (अधितिष्ठति) अधिष्ठान करके स्थित होता है (यः) जो (अग्रे) आगे (प्रसूतम्) उत्पन्न हुए (ऋषिम्) ऋषि (कपि-

लम्) हिरण्यगर्भ को (ज्ञानैः) ज्ञानों करकै (बिभर्त्ति) धारण करता है (च) और (तम्) उस (जायमानम्) उत्पन्न होतेहुए को (प्रपश्येत् देखै ॥ २ ॥

भावार्थ—पहिली श्रुति में वर्णन किये हुए पुरुष के विषय में कहते हैं कि जो सत्य निरवच्छिन्न सुख का अनुभवस्वरूप परमेश्वर अनादि सिद्ध माया नामक मूल प्रकृति जगत के दीखने और न दीखनेवाले सकल कारण सकल रूप और सकल बीज आदि में अधिष्ठित रहता है अर्थात विश्व के दृश्य और अदृश्य सकल ही पदार्थ जिस अनादि परमात्मा की अधिष्ठानभूमि हैं, जिसने ऋषि अर्थात् अप्रतिहत ज्ञानवाले अपनी शक्ति से उत्पन्न हुए कनककान्ति हिरण्यगर्भ को सृष्टिसे

प्रथम धर्म, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि दिव्य ज्ञानसे युक्त किया है और उस सूर्य की समान प्रकाशवान् उत्पन्न होते हुए हिरण्यगर्भ को प्रकाशके समय साक्षिरूप से अवलोकन किया है, वह परमपुरुष ही पहिली श्रुति में वर्णन की हुई अविद्या और विद्या दोनों से विमुक्त महापुरुष परमात्मा है, एक बार मनु को याद करो तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् । तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ २ ॥

एकैकं जालं बहुधा विकुर्वन् अस्मिन्क्षेत्रे संहरत्येष देवः । भूयः सृष्ट्वा-पतयस्तथेशः सर्वाधिपत्यं कुरुते महात्मा ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ--(एषः) यह (देवः)

देव (अस्मिन्) इस (क्षेत्रे) मायामय संसार-में (एकैकम्) एक एक (जालम्) मायाजाल-को (बहुधा) अनेकों प्रकार से (विकुर्वन्) फैलाता हुआ (संहरति) समेटता है (ये) जो (लोकानाम्) प्रजाओं के (पतयः) पति हैं (भूयः) फिर (तान्) उन को (सृष्ट्वा) रचकर (महात्मा) व्यापक (ईशः) परम-देव (तथा) पूर्वकल्प की समान (सर्वाधि-पत्यम्) सब पर प्रभुताको (कुरुते) करता है ॥ ३ ॥

(भावार्थ) यह परम अनादि परमपुरुष सृष्टि के समय, सुर नर पक्षी आदि एक २ जाल को इस मायामय संसार क्षेत्र में अने-कों प्रकार से फैलाकर फिर समय पर उस को समेटलेता है महात्मा ईश्वर प्रलय के अन्त में

सृष्टि के पूर्वकाल में फिर मरीचि आदि प्रजा पतियों को पूर्वकालके समान रचकर अपनी ईश्वरीय शक्ति को फैलाता है ॥ ३ ॥

सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् प्रकाशयन् भ्राजते यद्वनड्वान् । एवं स देवो भगवान् वरेण्यो योनि-स्वभावानधितिष्ठत्येकः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-:(यद् उ) जिस प्रकार (अनड्वान्) जगत् का वाहक सूर्य (ऊर्ध्वम्) ऊपर (अधः) नीचे (च) और (तिर्यक्) इधर उधर (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं को (प्रकाशन्) प्रकाशित करताहुआ (भ्राजते) देदीप्यमान होता है (एवम्) इसीप्रकार (सः) वह (वरेण्यः) भजनीय (भगवान्) ऐश्वर्य

वान् (एकः) एक (देवः) देव (योनिस्वभाववान्) कारणों के स्वभावों को (अधितिष्ठति) नियमित करता है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)--जैसे जगत् के कार्यों का निर्वाहक सूर्य ऊपर, नीचे, आजू बाजू सब दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ देदीप्यमान होता है, इसी प्रकार वह अद्वितीय, सेवा करने योग्य, सर्वशक्तिमान् परमात्मदेव कारणस्वभाव पृथिवी आदि विषयोंके स्वभावको नियम में रखता है ॥ ४ ॥

यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः
पाच्यांश्च सर्वान्परिणामयेद्यः ।
सर्वमेतद्विश्वमधितिष्ठत्येको गुणांश्च सर्वान् विनियोजयेद्यः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(च) और (यत्) जो (विश्वयोनिः) विश्व का कारण (स्वभावम्) स्वभाव को (पचति) निष्पन्न करता है (च) और (यः) जो (सर्वान्) सकल (पाच्यान्) परिपाक योग्य विषयों को (परिणामयेत्) परिपक्क करता है (च) और (यः) जो (सर्वान्) सब गुणान्) गुणों को (नियोजयेत्) नियुक्त करता है (एकः) एक (एतत्) इस (सर्वम्) सब (विश्वम्) विश्व को अधितिष्ठति) नियमित करता है ॥ ५ ॥

(भावार्थ) यह विश्व का कारण परमेश्वर जिस २ वस्तु का जो २ स्वभाव है उस को ठीक रखता है, जो परिपाक के योग्य होते हैं उन सब विषयों को परिपक्क करता है अर्थात् कारणों को कार्य उत्पन्न करनेके उन्मुख करताहै,

सत्त्व, रज, तम, इन तीनों गुणों को अपने २ कार्यों में नियुक्त करता है, इस प्रकार वह सब विश्व का शासन करता है ॥ ५ ॥

तद्वेदगुह्योपनिषत्सु गूढं तद्ब्रह्मा वेदते ब्रह्मयोनिम् । ये पूर्वं देवा ऋषय-यश्च तद्विदुस्ते तन्मया अमृता वै बभूवुः ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ–(तत्) वह (वेद गुह्योपनिषत्सु) वेद में दुर्बोध्य उपनिषद्विद्या में (गूढम्) गुप्तरूप से स्थित है (तत्) उस (ब्रह्मयोनिम्) वेद के आदिकारण को (ब्रह्मा) ब्रह्मा (वेद) जानता है (पूर्वम्) पहिले (ये) जो (देवाः) देवता (च) और (ऋषयः) ऋषि (तत्) उस को (विदुः) जान गए (ते)

वह (वै) निश्चय (तन्मयाः) तन्मय (अमृताः) अमर (बभूवुः) हुए ॥ ६ ॥

(भावार्थ) वेदों में कठिन से जानने योग्य उपनिषद्विद्या में वर्णन किये हुए उस वेद के खानि परमात्मा को ब्रह्मा जानता है, जिन रुद्र आदि पूर्वकाल के देवता और वामदेव आदि ऋषियों ने उस को जाना वह तन्मय होकर अमर होगये ॥ ६ ॥

गुणान्वयो यः फल कर्म कर्त्ता कृत-स्य तस्यैव स चोपभोक्ता । स विश्व-रूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः सञ्च-रति स्वकर्मभिः ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यः) जो (गुणान्वयः) गुणों से युक्त (फल कर्म कर्त्ता) फल वाले

कर्मों का कर्त्ता (च) और (सः) वह (कृतस्य) करे हुए (तस्य-एव) उस का ही (उपभोक्ता) भोग करनेवाला (सः) वह (विश्वरूपः) अनेकरूप हुआ (त्रिगुणः) तीन गुणोंवाला (त्रिवर्त्मा) तीन मार्गवाला (प्राणाधिपः) प्राणों का स्वामी हुआ (स्वकर्मभिः) अपने कर्मों करके (सञ्चरति) विचरता है ॥ ७ ॥

(भावार्थ) जो आत्मा सत्त्व, रज तम इन तीन गुणों के संग को पाकर सुख दुःख आदि फलवाले कर्मों को करता है, वह ही उन कर्मों के फल को भोगता है, वह अनेकों रूप वाला त्रिगुणधारी धर्म, अधर्म और ज्ञान इन तीन मार्गों में विचरनें वाला प्राणों का राजा जीव बनकर अपने कर्मों के वश में हुआ जहां

तहां अनेकों लोक और अनेकों योनियों में घूमता फिरता है ॥ ७ ॥

अंगुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहंकारसमन्वितो यः। बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव, आराग्रमात्रोऽप्यपरोऽपि दृष्टः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (अंगुष्ठमात्रः) अंगुष्ठमात्र (रवितुल्यरूपः) सूर्य की समान रूपवाला (एव) ही (संकल्पाहंकारसमन्वितः) संकल्प अहंकारसे युक्त (बुद्धेः) बुद्धि के (गुणेन) गुण करके (च) और (आत्मगुणेन) शरीर के गुण करके (युक्तः) युक्त हुआ (आराग्रमात्रः) आरे के अग्रभाग की समान (अपि) भी (अपरः) दूसरा (अपि-एव) ही (दृष्टः) देखागया है ॥८॥

(भावार्थ) जो सगुण आत्मा (जीव) सूर्य की समान ज्योतिःस्वरूप अंगुष्ठमात्र है वह ही संकल्प, अहंकार, बुद्धि के गुण तथा जरा आदि शरीर के गुणों से युक्त होने पर लोहे के कांटे की अनी के समान अतिसूक्ष्म होने पर भी अनित्य विषयों में, मैं मेरा इत्यादि प्रकार से लिप्त होता हुआ देखागया है ॥ ८ ॥

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पि-तस्य च । भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वालाग्रशतभागस्य) वाल के अग्रभाग के सौवें भाग का (च)और (शतधा) सौभाग में (कल्पितस्य) रचे हुए का (भागः) भाग (सः) वह (जीवः) जीव (विज्ञेयः) जानना (च) और (सः) वह

(आनन्त्याय) अनंतता को (कल्पते) पाने योग्य होता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ) इसी जीव को अग्रभाग के सौवें भाग के सौवें भागकी समान अतिसूक्ष्म जानना चाहिये, वह अनन्तभाव को पाताहै९॥

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः । यद् यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स रक्ष्यते ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ- (एषः) यह (स्त्री) स्त्री (न एव) कदापि नहीं (भवति) होता है (पुमान्) पुरुष (न) नहीं (भवति) होता है (च) और (अयम्) यह (नपुंसकः) नपुंसक (न एव) नहीं (भवति) होता है (सः) वह (यद्यद्) जिस २ (शरीरम्) शरीर को

(आदत्ते) ग्रहण करता है (तेन-तेन) तिस २ से (रक्ष्यते रक्षित होता है ॥ १० ॥

(भावार्थ) यह जीवात्मा स्त्री नहीं है, पुरुष नहीं है, और नपुंसक भी नहीं है, यह जिस २ शरीर को ग्रहण करता है उस २ से ही रक्षा किया जाता है ॥ १० ॥

संकल्पनस्पर्दन दृष्टि मोहैर्ग्रासांबुवृ-ष्ट्यात्मविवृद्धि जन्मवत । कर्मानु-गान्यनुक्रमेण देही स्थानेषु रूपाण्य-भिसम्प्रपद्यते ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ--(देही) जीवात्मा (ग्रासांबुवृष्ट्या) भोजन जलके सुभीते से (आत्मविवृद्धि जन्मवत) शरीर की वृद्धि की उत्पत्ति के समान (संकल्पनस्पर्शनदृष्टि

मोहैः) संकल्प करना, स्पर्श करना दृष्टि और मोह होना इन करके (अनुक्रमेण) क्रम से (स्थानेषु) स्थानों में (कर्मानुगानि) कर्मानुसार (रूपाणि) रूपों को (अभिसम्प्रपद्यते) प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥

(भावार्थ) जैसे खाने पीने के सुभीते से शरीर की वृद्धि प्रकाशित होती है तैसे ही देही अर्थात् जीवात्मा, संकल्प करना स्पर्श करना, दृष्टि और मोह के कारण एक प्रकार की वृद्धि पाता है, फिर कर्मानुसार क्रमसे अनेकों स्थानों में रूपों को धारण करता है ॥ ११ ॥

स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति। क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ--(देही) प्राणी (स्वगुणैः) अपने गुणों करके (स्थूलानि) स्थूल (सूक्ष्माणि) सूक्ष्म (बहूनि) बहुत से (रूपाणि) रूपों को (वृणोति)आच्छन्न करता है (तेषाम्) उनकी (क्रियागुणैः) क्रिया के गुणों करके (आत्मगुणैश्च) शरीर के गुणों करके भी संयोग हेतुः (संयोग) का हेतु (अपरः) सूक्ष्मरूप से (अपि) भी (दृष्टः) देखा है ॥ १२ ॥

(भावार्थ) जीवात्मा देहधारण करने पर अपने गुण कहिये पूर्व जन्मों के संस्कारों करके स्थूल तथा सूक्ष्म अनेकों रूपों को ढकता है और उन सब रूपों की क्रिया के गुण से तथा शरीर के गुणों से संयोग करने वाला आत्मा सूक्ष्मरूप से देखने में आता है ॥ १२ ॥

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनन्तरूपम्। विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ--(अनाद्यनन्तम्) अनादि और अनन्त (कलिलस्य) गहन के (मध्ये) मध्य में (स्थितम्) स्थित (विश्वस्य) विश्व के (स्रष्टारम्) रचने वाले (अनेक रूपम्) अनेक रूप (विश्वस्य) विश्व के (एकम्) अद्वितीय (परिवेष्टितारम्) परिवेष्टन करने वाले (देवम्) देव को (ज्ञात्वा) जान कर (सर्वपाशैः) सकल बन्धनों से (मुच्यते) छूटजाता है॥ १३ ॥

(भावार्थ) अनादि, अनन्त, अविद्यारूप

गहन में स्थित विश्व के स्रष्टा, अनेकरूप, विश्वके अद्वितीय परिवेष्टयिता, परमात्मा देव को जानकर साधक सब बंधनों से मुक्त हो जाता है॥ १३ ॥

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम् । कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ--(ये) जो (भावग्राह्यम्) भक्ति से ग्रहण करने योग्य (अनीडाख्यम्) अशरीर नामक (भावाभावकरम्) सृष्टि और प्रलय करने वाले (शिवम्) मंगलस्व· रूप (कलासर्गकरम्) अंश से भरी सृष्टि को करनेवाले (देवम्) देव को (विदुः)

जानतेहुए (ते) वह (तनुम्) देहको (जहुः) त्यागते हुए ॥ १४ ॥

(भावार्थ) जो भक्ति करके ग्रहण करने योग्य है, जिस का नाम अशरीरी है, जो सृष्टिकी उत्पत्ति और संहार का कारण है, मंगलस्वरूप है, और अंश से भरी प्राणादि सृष्टि का करनेवाला है उस आत्म देव को जिन्होंने जाना है, उन्हों ने ही देहाभिमान को त्यागा है अर्थात् बन्धन से मुक्ति पाई है ॥ १४ ॥

इति पंचमोऽध्यायः ।

अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

स्वभावमेके कवयो वदन्ति, कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः । देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्म चक्रम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ--(एके) कोई (कवयः) विद्वान् (स्वभावम्) स्वभाव को (तथा) तैसेही (अन्ये) दूसरे (परिमुह्यमानाः) मोहित होतेहुए (कालम्) काल को (विश्वकारणम्) विश्वका कारण (वदन्ति) कहते हैं (एषः) यह (तु) तो (देवस्य) परमात्मा की (महि- मा) महिमा है (येन) जिसकरके (इदम्)

यह (ब्रह्मचक्रम्) संसार चक्र (भ्राम्यते) घूमता है ॥ १ ॥

(भावार्थ) कितने ही तत्त्व की खोज करनेवाले विद्वान् स्वभावको विश्व का कारण कहते हैं, परन्तु वास्तव में देखा जाय तो जगत् में एक परमेश्वर की ही महिमा व्याप-रही है, जिसमें यह ब्रह्मचक्र फिरता है अर्थात् जगत् परिचालित होता है ॥ १ ॥

येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः काल-कारो गुणी सर्वविद्यः। तेनेशितं कर्म विवर्ततेह, पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखानि चिन्त्यम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(येन) जिस करके (हि) निश्चय (इदम्) यह (सर्वम्) सब

(नित्यम्) सदा (आवृतम्) व्याप्त है (यः) जो (ज्ञः)ज्ञानवान् (कालकारः) कालका कर्त्ता (गुणी) गुणोंवाला (सर्ववित्) सब का जाननेवाला है (तेन) तिस करके (ईशितम्) नियमित (कर्म) कर्म (पृथ्व्यप्ते-जोऽनिलखानि) पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश रूप से (विवर्त्तते) कार्योन्मुख होरहा है (ह) इसप्रकार (चिन्त्यम्) विचारने योग्य है ॥ २ ॥

(भावार्थ) जिस ने निरन्तर इस सब जगत् को लपेट रक्खा है, जो सब कुछ जाने हुए है, काल को भी रचनेवाला, निर्लि-प्तता आदि गुणों से युक्त और सब कुछ जा-ननेवाला है, उसके ही नियमित कर्म-रूप से यह पृथ्वी; जल, तेज, वायु, और

आकाश आदि सब अपनी सत्ता पर जमरहे हैं, ऐसा चिंतवन करना चाहिये ॥

तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्त्य भूयस्तत्त्व-स्य तत्त्वेन समेत्य योगम् । एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टाभिर्वा कालेन चैवा-त्मगुणैश्च सूक्ष्मैः ॥ ३ ॥ आरभ्य क-र्माणि गुणान्वितानि, भावांश्च सर्वा-न्विनियोजयेद्यः तेषामभावे कृत-कर्मनाशः कर्मक्षये याति स तत्त्व-तोऽन्यः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (तत्) उस (कर्म) कर्म को (कृत्वा) करके (भूयः) फिर (विनिवर्त्त्य) सम्पादन करके (तत्त्वस्य) तत्त्व के (तत्त्वेन) तत्त्व के साथ (योगम्) योगको

(समेत्य) करकै (एकेन) एक करकै (द्वाभ्याम्) दो करकै (त्रिभिः) तीन करकै (वा) या (अष्टभिः) आठ करके (कालेन) कालकरके (च) और (सूक्ष्मैः) सूक्ष्म (आत्मगुणैश्च) अन्तःकरण के गुणों करके भी (गुणान्वितानि) गुणों करकै युक्त (कर्माणि) कर्मों को (आरभ्य) आरम्भ करकै (च) और (यः) जो (सर्वान्) सब (भावान्) विषयों को (विनियोजयेत्) अपने २ कर्म में लगाता है (तेषाम्) उन के (अभावे) अभाव में (कृतकर्मनाशः) किया है कर्मका नाश जिसने ऐसा (कर्मक्षये) कर्मका नाश होने पर (याति) अपने स्वरूप को प्राप्त होजाता है (सः) वह (तत्त्वतः)तत्त्व से (अन्यः) भिन्न है॥३॥४॥

(भावार्थ) पंचभूतों को हिलाने का कर्म

करके, फिर सृष्टि का सम्पादन करके विषय के साथ आत्मा का संयोग करके, एक अहंकार से, दो अहंकार और बुद्धि से, तीन--अहंकार बुद्धि और मन से, या आठ अहंकार, बुद्धि, मन, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इनसे और अन्तःकरणके अतिसूक्ष्म गुणों के साथ आत्म तत्त्व का संयोग स्थापित करके, इस प्रकार सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों से युक्त सृष्टिकर्म का आरम्भ करके जो परमात्मा उन सब विषयों को अपने २ काममें लगाता है, वही उन सब के अपने कर्म से हटजाने पर, उस सृष्टिकर्म के क्षय के समय अर्थात् प्रलयकाल में उस अपने सब सृष्टिकर्म को समेट कर, प्रकृति से उत्पन्नहुए विषयों से भिन्न अपने निर्गुण स्वरूप में स्थित होजाता है, वह इस सब सृष्टि से निराला ही है ॥ ३ ॥ ४ ॥

आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रि-कालादकलोऽपि दृष्टः । तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (आदिः) सबको आदि (संयोगनिमित्तहेतुः) संयोग होने का निमित्त कारण (त्रिकालात्) तीनों काल से (परः) पर (अकलः) कलारहित (अपि) भी (दृष्टः) देखागया है (तम्)उस (विश्वरूपम्) विश्वरूप (भवभूतम्) कार्य-कारणमय संसाररूप हुए (ईड्यम्) स्तुतियोग्य (स्वचित्तस्थम्) अपने चित्त में स्थित (देवम्) देव को (पूर्वम्) पहिले (उपास्य) उपासना करके (साधकः) साधक (मुच्यते) मुक्त होता है ॥ ५ ॥

(भावार्थ) जो सब का आदिकारण (उपादान कारण) है जो पंचभूतों के संयोग का निमित्त कारण हैं, जो भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनों काल के व्यवहार से पर है, जो कलारहित होनेपर भी समाधिनिष्ठों के देखने में आया है, उस विश्वरूप और निर्लिप्तभाव के कार्य कारण--स्वरूप; स्तुति योग्य देव को पहिले अपने चित्त में स्थित मानकर, उपासना करै तो, साधक मुक्ति के मार्ग को पाजाता है ॥ ५ ॥

स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात्प्रपञ्चः परिवर्त्ततेऽयम् । धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (प्रपंचः) संसार (यस्मात्) जिस से (परिवर्तते) विस्तार को प्राप्त होता है (सः) वह (वृक्ष-कालाकृतिभिः) संसार और काल के आकारों करके (परः) अतीत है (अन्यः) भिन्न है (तम्) उस (धर्मावहम्) धर्म को लानेवाले (पापनुदम्) पाप को दूर करनेवाले (भगेशम्) ऐश्वर्य के स्वामी (अमृतम्) अमृत स्वरूप (विश्वधाम) विश्वके आधार को (आत्मस्थम्) आत्मा में स्थित (ज्ञात्वा) जानकर (मुच्यते) मुक्त होता है ॥ ६ ॥

(भावार्थ) वह संसार तथा काल के आकारों से अलग है अर्थात् देश कालातीत है, विषय से भिन्न है, उस के ही प्रभाव से यह सब जगत का फैलाव चलरहा है

वह धर्मभाव का लाने वाला, और पापका हटाने वाला है, उस ऐश्वर्य पति अमृत स्वरूप विश्वाधार को आत्ममात्र में स्थित जानकर साधक मुक्त होजाता है ॥ ६ ॥

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् । पतिं पतीनां परमं परस्तात् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तम्) उस (ईश्वराणाम्) लोकपालों के (परमम्) बडे (महेश्वरम्) महाप्रभु (तम्) उस (देवतानाम्) देवताओंके (परमम्) बडे (दैवतम्) पूज्य (पतीनाम्) स्वामियों के (परमम्) सब से

बडे (पतिम्) पति (परस्तात्) सब से श्रेष्ठ (भुवनेशम्) भुवनोंके स्वामी (ईड्यम्) पूजनीय (देवम्) देव को (वयम्) हम (विदाम) जानते हैं ॥ ७ ॥

(भावार्थ) वह ईश्वरों का सब से बडा महेश्वर है, वह इन्द्रादि देवताओं का भी माननीय देवता है। स्वामियोंका भी महाप्रभु है। हिरण्यगर्भ से भी परम श्रेष्ठ है, सकल भुवनों का स्वामी है, ऐसे स्तुतियोग्य परमात्म देव को हम जानते हैं ॥ ७ ॥

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्य) उस के (कार्यम्) शरीर (च) और (करणम्) इन्द्रिय (न) नहीं (विद्यते) है (च) और (तत्समः) उसकी मान (अभ्यधिकः) अधिक (च) भी (न) नहीं (दृश्यते) दीखता है (अस्य) इस की (विविधा) विचित्र (परा एव) सब से बढीहुई ही (शक्तिः) शक्ति (श्रूयते) सुनने में आती है (च) और (ज्ञानबलक्रिया) ज्ञानक्रिया और बलक्रिया (स्वाभाविकी) स्वाभाविक है ॥ ८ ॥

(भावार्थ) उस के न उत्पन्न हुआ स्थूल शरीर है, न इंद्रियें हैं, उस के समान वा उस से श्रेष्ठ कोई दूसरा देखने में नहीं आता उस की विचित्र परा शक्ति का वेद वर्णन करता है, उस की ज्ञान की तथा बल की क्रि-या स्वाभाविक है ॥ ८ ॥

न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके, न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् । स कारणं करणाधिपाधिपो, न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(लोके) लोक में (कश्चित्) कोई (तस्य) उस का (पतिः) पति (न) नहीं (च) और (ईशिता) नियन्ता (न) नहीं (च) और (लिङ्गम्) चिह्न (न एव) नहीं ही (अस्ति) है (सः) वह (कारणम्) कारण (करणाधिपाधिपः) इंद्रियों के राजाओं का राजा (च) और (कश्चित्) कोई (अस्य) इस का (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (न) नहीं (च) और (अधिपः) स्वामी (न) नहीं है ॥

(भावार्थ) इस जगत् में न कोई उसका स्वामी है, न कोई उस के ऊपर आज्ञा चला सकता है, उस की समान कोई नहीं अथवा उस के अनुमान का साधन कोई चिह्न नहीं है, वह विश्व का वा विद्या का कारण है और इंद्रियों की अधिष्ठात्री देवताओं का भी राजा है, इस को उत्पन्न करने वाला वा उस का राजा कोई नहीं ॥ ९ ॥

यस्तूर्णनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः
स्वभावतो देव एकः । स्वमावृणोति
स नो दधातु ब्रह्माप्ययम् ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (एकः) अद्वितीय (देवः) देवता (ऊर्णनाभ इव) मकड़ी की समान (स्वभावतः) स्वभाव से

(प्रधानजैः) प्रकृति से उत्पन्न हुए (तन्तुभिः) वस्तुओं से (स्वम्) अपने को (आवृणोति) आच्छादित करता है (सः) वह (नः) हमारा (ब्रह्माप्ययम्) ब्रह्ममें लय (दधातु) करै ॥१०॥

(भावार्थ) जो अद्वितीय देवता मकडी की समान, स्वभाव से जगत् के मुख्य कारण में से निकलेहुए कार्यरूप तन्तुओं से अपने को ढक लेता है वह हमारा ब्रह्ममें प्रवेश करावै ॥ १०॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः, साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ–(एकः) एक (देवः) देव (सर्वभूतेषु) सकल भूतों में (गूढः) गूढ

(सर्वव्यापी) सब में पुराहुआ (सर्वभूतान्तरात्मा) सकल प्राणियों का अन्तर्यामी (कर्माध्यक्षः) कर्म का स्वामी सर्वभूताधिवासः) सकल भूतों का आश्रय (साक्षी) साक्षी (चेताः) चेतन (केवलः) अद्वितीय (च) और (निर्गुणः) निर्गुण (अस्ति) है ॥ ११ ॥

(भावार्थ—वह अद्वितीय देवता सब प्राणियोंमें गुप्तरूप से रहनेवाला, सब में पुरा हुआ, सब का अन्तर्य्यामी सृष्टिरचनारूप कर्मका स्वामी; सकल भूतों का आश्रय, साक्षी, चेतन दूसरे की सत्ता की अपेक्षा न करनेवाला और निर्गुण है ॥ ११ ॥

एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति । तमात्म

स्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (बहूनाम्) बहुतसी (निष्क्रियाणाम्) क्रियारहित वस्तुओं का (एकः) एक (वशी) नियन्ता है (एकम्) एक (बीजम्) बीज को (बहुधा) बहुता प्रकार का (करोति) करता है (तम्) उस (आत्मस्थम्) अपने में स्थित (ये) जो (धीराः) ज्ञानी (अनुपश्यन्ति) गुरूपदेश के अनन्तर देखते हैं (तेषाम्) उन को (शाश्वतम्) नित्य (सुखम्) सुख होता है (इतरेषाम्) औरों को (न) नहीं ॥ १२ ॥

(भावार्थ) बहुत से अक्रिय पदार्थों का

जो एक ही नियन्ता है, जो एक बीजस्वरूप

भूत को बहुत प्रकार का करदेता है, उस को जो ज्ञानी अपने में देखते हैं उन को नित्य सुख मिलता है औरों को नहीं ॥ १२ ॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामे-
को बहूनां यो विदधाति कामान्।
तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा
देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(नित्यानाम्) नित्यों में (नित्यः) नित्य (चेतनानाम्) चेतनों में (चेतनः) चेतन (यः) जो (बहूनाम्) बहुतोंके (कामान्) कामों को (विदधाति) पूर्ण करता है (तत्) उस (कारणम्) कारणरूपी (सांख्ययोगाधिगम्यम्) सांख्य और योग के द्वारा जानने में आनेवाले (देवम्) देव को

(ज्ञात्वा) जानकर (सर्वपाशैः) सब बन्धनों से (मुच्यते) छूटजाता है ॥ १३ ॥

(भावार्थ) जो नित्य जीव या वस्तुओं में नित्य है, जो चेतनों में चेतन है; जो अकेला ही बहुतों की कामनाएँ पूर्ण करता है उस सांख्य योग के द्वारा जानने में आनेवाले जगत के कारण परात्मदेव को जानकर सब पाशों से छूटताहै ॥ १३ ॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं,
नेमा विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भा-
सा सर्वमिदं विभाति ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्र) तहां (सूर्यः) सूर्य (न) नहीं (भाति) प्रकाश करता है (च-

न्द्रतारकम्) चन्द्रमा और तारे (न) नहीं (इमाः) यह (विद्युतः) बिजलियें (न) नहीं (भान्ति) प्रकाशित होती हैं (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि (कुतः) कहाँ (तम्) उस को (एव) ही (भान्तम्) प्रकाश करते हुए (अनु) पीछे (सर्वम्) सब (भाति) प्रकाशित होता है (तस्य) उस के (भासा) प्रकाश से (इदम्) यह (सर्वम्) सब (विभाति) प्रकाशित है ॥ १४ ॥

(भावार्थ) जिस ब्रह्म के समीप सूर्य की किरणें नहीं पहुँच सकतीं, चन्द्रमा तारागण नहीं पहुँच सकते, यह बिजलियें भी प्रकाश नहीं देती हैं, फिर इस अग्नि की तो बात ही क्या ! सूर्यादि सब उस दीप्यमान के प्रकाश को लेकर प्रकाशित होते हैं उस के ही

प्रकाश से सब प्रकाशित हो रहा है ॥ १४ ॥

एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले सन्निविष्टः । तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अस्य) इस (भुवनस्य) भुवन के (मध्ये) मध्य में (एकः) एक (हंसः) हंस है (स एव) वह ही (सलिले) जल में (सन्निविष्टः) प्रविष्ट (अग्निः) अग्नि है (तम्—एव) उस को ही (विदित्वा) जान कर (अतिमृत्युम्) मृत्यु के पार (एति) प्राप्त होता है (अयनाय) जाने को (अन्यः) और (पन्थाः) मार्ग (न) नहीं (विद्यते) है॥१५॥

(भावार्थ) वह परमात्मा इस भुवन में हंस

कहिये अविद्या आदि बन्धन के कारणों का नाशक है, वह ही पानी की समान निर्मल अन्तःकरण में रहनेवाली अविद्या को भस्म करने वाली अग्नि की समान है, उस को ही जानकर साधक मृत्यु के पार होता है अमरता को पाने का और मार्ग नहीं है ॥ १५ ॥

स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिः काल-कारो गुणी सर्वविद्यः । प्रधानक्षेत्रज्ञ पतिर्गुणेशः, संसार मोक्षस्थिति बन्ध हेतुः ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (विश्व-कृत्) विश्व को रचने वाला (विश्ववित्) विश्व को जानने वाला (आत्मयोनिः) स्वय-म्भूः (कालकारः) काल का कर्त्ता (गुणी)

गुणवाला (सर्ववित्) सब को जानने वाला (अस्ति) है (यः) जो (प्रधान क्षेत्रज्ञपतिः) मूलशक्ति और जीवात्मा का स्वामी (गुणेश) गुणों का नियन्ता (संसार मोक्ष स्थिति हेतुः) संसार से होनेवाले मोक्ष स्थिति और बन्धन का हेतु (अस्ति) है ॥ १६ ॥

(भावार्थ) वह विश्व का कर्त्ता, विश्व का ज्ञाता, स्वयम्भू काल का कर्त्ता, गुणी और सब कुछ जानने वाला है, जो सब जगत की मूल शक्ति और शरीर के ज्ञाता जीव का भी स्वामी सत्त्वादि गुणों का नियन्ता और संसार से होने वाले, मोक्ष पालन और बन्धन का कारण है ॥ १६ ॥

स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो ज्ञः सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता । य ईशेऽस्य

जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (हि) निश्चय (तन्मयः) ज्योतिर्मय (अमृतम्) अमरणधर्मा (ईशसंस्थः) स्वतन्त्र रहनेवाला (ज्ञः) ज्ञाता (सर्वगः) सर्वव्यापी (अस्य) इस (भुवनस्य) भुवन का (गोप्ता) रक्षक (यः) जो (नित्यमेव) नित्य ही (अस्य) इस (जगतः) जगत् का (ईशे) नियमन करता है (ईशनाय) नियमन के लिये (अन्यः) और (हेतुः) कारण (न) नहीं विद्यते है ॥१७॥

(भावार्थ) वह विश्वरूप वा प्रकाशमय, अमर, राजा की समान स्वतन्त्र, ज्ञाता सर्वत्र गतिवाला, और इस भुवन का पालन करने

वाला है, वह ही इस जगत् को सदा नियममें रखता है, इस जगत् का दूसरा नियामक नहीं है ॥ १७ ॥

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं, यो वै वेदां श्च प्रहिणोति तस्मै । तं ह देवमात्म-बुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (पूर्वम्) पहिले (ब्रह्माणम्) ब्रह्मा को (विदधाति) रचता है (वै) निश्चय (यः) जो (तस्मै) उस के अर्थ (वेदान्) वेदों को (च) भी (प्रहिणोति) देता है (वै) निश्चय (अहम्) मैं (मुमुक्षु) मोक्ष की इच्छा करता हुआ (आत्म-बुद्धिप्रकाशम्) आत्मज्ञानप्रकाशक (तं ह)

उस ही (देवम्) देवको (शरणम्) शरण (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूं ॥ १८ ॥

(भावार्थ) जिस ने पहिले ब्रह्माको रचा और फिर उस को वेद दिया, मैं मुमुक्षु होकर उस आत्मज्ञान प्रकाशक वा आत्मज्ञान से प्रकाशित होने वाले देवताकी शरण लेताहूँ१८॥

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरंजनम् । अमृतस्य परं सेतुं दग्धे-न्धनमिवानिलम् ॥ १९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अहम्) मैं (निष्कलम्) पूर्ण (निष्क्रियम्) क्रियारहित (शान्तम्) निर्विकार (निरवद्यम्) निर्दोष (निरंजनम्) निर्लेप (अमृतस्य) अमरपनके (परमम्) परम (सेतुम्) सेतु (दग्धेन्धनम्) जिस का

इंधन जलगया है ऐसे (अग्निम् इव) अग्नि की समान (देवम्, शरणम्, प्रपद्ये) देव को शरण जाता हूँ ॥ १९ ॥

(भावार्थ) जिस के अंश न हों, क्रियारहित, शान्त, निन्दारहित, निर्लेप, मोक्ष के श्रेष्ठ सेतु, इंधन जलने पर स्वयंप्रकाश हुए अग्नि की समान देवता की मैं शरण लेताहूँ १९॥

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः । तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥ २० ॥

अन्वय और पदार्थ--(यदा) जब (मानवाः) मनुष्य (चर्मवत) चमडे की समान (आकाशम्) आकाशको (वेष्टयिष्यन्ति) घेरलेंगे (तदा) तब (देवम्) परमात्मा को

(अविज्ञाय) विनाजाने (दुःखस्य) दुःखका (अन्तः) अन्त (भविष्यति) होगा ॥ २०॥

(भावार्थ) जब मनुष्य आकाशको चमडे की समान घेरलेंगे अर्थात् जब असंग आत्माको न जानकर भी दुःख नष्ट होजायगा । क्योंकि उस अवस्थामें सब जीव व्यापारशून्य होनेसे सुषुप्ति अवस्था के समान परमात्माको जाने विना भी कुछ काल के लिये दुःखरहित होजाते हैं । परन्तु सदाके लिये शान्त एक रस निर्दोष उज्ज्वल सच्चिदानन्द परमात्माका शरण अवश्य लेना चाहिये ॥ २० ॥

तपः प्रभावाद्देवप्रसादाच्च ब्रह्म श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान् । अन्त्याश्रमिभ्यः

परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषिसंघ-
जुष्टम् ॥ २१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) इसके अनंतर (विद्वान्) परावर और ब्रह्मतत्त्वको जाननेवाला (श्वेताश्वतरः) श्वेताश्वतर मुनि (तपः प्रभावात्) दैहिक वाचिक और मानसिक तपश्चर्याओंके माहात्म्यसे (च) और (देवप्रसादात्) देवताओंके अनुग्रहसे (सम्यक्) विधिपूर्वक (ऋषिसंघजुष्टम्) मुनि समूहसे सेवित (परमं) अत्यन्त (पवित्रम्) श्रेष्ठ शुद्ध (ब्रह्म) परब्रह्मका स्वरूप (अन्त्याश्रमिभ्यः) संन्यासियोंके लिये (प्रोवाच) कहते भये ॥ २१ ॥

(भावार्थ) विधिपूर्वक ब्रह्मचर्याश्रम में

वेद वेदाङ्ग उपनिषद् इत्यादिका अभ्यास करके तपके प्रभावसे और देवताओं के अनुग्रहसे श्वेताश्वतर मुनिने ब्रह्मका स्वरूप जाना, हजारों लाखों मुनि जिस ब्रह्म ज्ञानका बडा अनुशीलन करतेहैं उसी परम पवित्र ब्रह्मज्ञानको मुमुक्षुओं के लिये कहा ॥ २१ ॥

वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम्। नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाऽशिष्याय वा पुनः ॥ २२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वेदान्ते) ब्रह्मप्रतिपादक शास्त्रों में (पुराकल्पे) सतयुग आदि प्राचीन समय में (परमं) अत्यंत (गुह्यं) अप्रकाशनीयबात (प्रचोदितम्) कहा गया है (तत्) वह गुप्त बात (अप्रशान्ताय) भली

भांति शान्ति प्राप्ति किये हुए को छोडकर (न दातव्यं) नहीं देना चाहिये । (वा) अथवा (अपुत्राय) पुत्र रहितके लिये (पुनः) फिर (अशिष्याय) अच्छे शिष्य को छोडकर (न दातव्यं) नहीं देना चाहिये ॥ २२ ॥

(भावार्थ) उपनिषद् आदि ब्रह्म प्रतिपादक वेदान्त शास्त्रमें पहिले से ही अत्यन्त गुप्त बात कही गई है अर्थात् सर्व समर्थ ब्रह्मके विषयमें 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता' उसके हाथ पैर आदि कुछ नहीं है तथापि वह चलता है पकडता है । ' सर्वतः पाणिपादन्तत्सर्वतोऽक्षि-शिरोमुखम् । ' उसके सब तरफ हाथ पैर आंख मुख और शिरहैं इत्यादि परस्पर विरुद्ध वाक्य मिलते हैं उनका गुप्त अर्थ रहता है, वैसी वैसी बात विशेष विचार सापेक्ष होतीहैं उनके लिये

उतनेही विचार की आवश्यकता रहती है जो कि सत्य युग में ही वह बातें निर्णय के साथ कही गई हैं। वह बातें अधिकारी के लियेही हैं शान्त दान्त तितिक्षु इत्यादि अधिकारी शिष्य या पुत्र को छोडकर दूसरे लोगोंसे ऐसी योग्यतम बातें न कहना ही अच्छा है ॥ २२ ॥

यस्य देवे परामक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ २३ ॥

अन्वय और पदार्थ--(यस्य) जिसकी (देवे) देवता पर (परा) श्रेष्ठ (भक्तिः) भक्ति है (यथा) जिस प्रकार (देवे) देवतामें (तथा) उसी प्रकार (गुरौ) गुरुमें हो (तस्य) उसी (महात्मनः) महात्माके लिये (एते)

यह उपनिषत्सम्बन्धी अर्थाः प्रयोजन कथिताः कहे हुए (प्रकाशन्ते) प्रसिद्ध होते हैं ॥ २३ ॥

(भावार्थ) देवताओंकी ज्ञानशक्ति बहुत बढी हुई होती है उनका प्रत्यक्ष मनुष्य देहसे होना कठिन होता है इस लिये गुरु की सेवासे भी वह कार्य सिद्ध होजाता है जो देवता के प्रसाद से होता इसलिये अधिकारीके लिये उपदेश है कि जिस मनुष्यकी देवता में बडी भक्ति हो अपने गुरुमें भी देवता की तुल्य ही भक्ति हो उसीको वेदान्त शास्त्रका रहस्य मालूम पड़ता है, वही महात्मा है इससे साफ होगया कि देवताओं का महत्त्व सर्व सम्मत है परन्तु उनकी कृपा बडे भाग्य से होसकती है गुरुतो दया की मूर्ति होते हैं प्रतिक्षण उनका दर्शन भी हो सकता है इससे गुरुकी देवताके

समान श्रद्धा और भक्तिसे मनुष्य के सभी कार्य सिद्ध होजाते हैं ॥ २३ ॥

इति श्रीमुरादाबादनिवासि-पंडितभोलानाथात्मज सनातनधर्मपताकासम्पादक ऋ. कु. रामस्वरूपशर्मकृतायां 'श्वेताश्वतरोपनिषद्भाषा-टीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-मूल्य-२0

बम्बई.

क्रय्यपुस्तकें (वेदान्त-ग्रन्थाः)।

अपरोक्षानुभूति-श्रीशङ्कराचार्यकृत और स्वामि श्रीविद्यारण्यमुनिकृत दीपिका सहित तथा श्रीयुत पं० रामस्वरूप-जीकृत भाषाटीकासमेत । जिसमें-संक्षेपसे वेदान्त प्रक्रियाका सरलरीतिसे भली प्रकार वर्णन है ०-१०

अष्टावक्रगीता-भाषाटीकासहित-श्रीअष्टावक्रमुनि प्रणीत गुरुशिष्य संवादमें ब्रह्मविद्या जाननेका अति सरल सुगमोपाय है १-०

अवधूतगीता-श्रीमत्परमयोगिवर श्रीदत्तात्रेयप्रणीत-रेशमी गुटका ०-६

अवधूतगीता-भाषाटीकासमेत ... ०-७

अद्वैतसुधा ०-१२

अध्यात्मप्रदीपिका-श्री अष्टावक्र मुनि-
विरचित अत्युत्तम ज्ञानमय वेदान्तो-
पदेश ०-६

आत्मबोध-भाषाटीकासमेत । वेदांतमें
प्रवेश करानेवालेको शीघ्र बोधहोताहै ०-३

गणेशगीता-पं-ज्वालाप्रसादजीमिश्रकृत
भाषाटीकासहित(गणेशपुराणोक्त) ०-६

गोविन्दाष्टक-आनन्दगिरिकृत संस्कृत-
टीका तथा पं०कन्हैयालाल शर्मकृत
भाषटीकासमेत ०-२

जीवन्मुक्तिगीता-भाषाटीका समेत । इस
छोटेसे ग्रन्थमें ज्ञानोपदेश उत्तम
वर्णित है..... .... ०-१

तत्त्वबोध-भाषाटीकासमेत । यह वेदां-
तका प्रथम श्रेणीका सर्वोत्तम ग्रन्थहै ०-२

देवीगीता-(देवीभागवतान्तर्गत) भाषा

टीकासहित। शाक्तलोगों याने देवी-
भक्तोंके लिये नित्य पाठकरने
योग्यहै. ०--८
नारदगीता--मूलमात्र. ०--१
नारदगीता--भाषाटीकासहित ... ०--१
निर्वाणाष्टक. ०--१
पञ्चदशी-सटीक-पं० रामकृष्णाख्य वि-
द्वान्‌की तत्त्व विवेक व्याख्या टीका
सहित. ०--२
पञ्चदशी--पं० मिहिरचन्द्रकृत अत्युत्तम
भाषाटीकासहित। जिसमें--तत्त्ववि-
वेक, द्वैतविवेक, महावाक्यविवेक,
कूटस्थदीप, नाटकदीप, योगानन्द,
आत्मानन्द, अद्वैतानन्द, विद्यानन्द,
विषयानन्दादिमें वेदान्तमार्ग भली-

भाँति दर्शाया है ३--८

पंचदशी--केवल भाषामात्र आत्मस्वरूपजी कृत। उपरोक्त सर्वालंकारोंसे विभूषित है ३--८

पंचदशगीता-भाषाटीकासमेत। जिसमें श्रीमहाभारतान्तर्गत-काश्यपगीता, शौनकगीता, अष्टावक्रगीता अध्याय ४, नहुषगीता अध्याय २, सरस्वती गीता, युधिष्ठिरगीता अध्याय ४; बकगीता, धर्मव्याधगीता तथा श्रीकृष्णगीतादिका एकत्र संग्रहहै. ०--१२

प्रश्नोत्तरमुक्तावली-भाषाटीका सहित। इसमें अतिश्रेष्ठ १२२ प्रश्न और उनके यथार्थ उत्तर हैं (गुरुशिष्य संवाद) ०--२

प्रश्नोत्तरी-(प्रश्नोत्तरमणिरत्नमाला) श्रीमच्छंकराचार्यकृत मूल तथा पं०

नन्दलालशास्त्रीकृत भाषाटीकासमे-
त (गुरुशिष्य संवाद) ....०-१॥
प्रश्नोत्तररत्नमाला-सटीक ०-२
पुरञ्जनोपाख्यान-भाषाटीकासहित।बहु-
त ज्ञानमय अपूर्व वेदान्त है ०-४
ब्रह्मसूत्र-(शारीरक) व्यासप्रणीत।
गोविन्दानन्दकृतरत्नप्रभाटीका तथा
शंकराचार्यकृत शाङ्करभाष्य रामा-
नुजाचार्यकृत श्रीभाष्य,माधवभाष्य
तथा निम्बार्कभाष्य सहित छपता है
ब्रह्मसूत्र-(शारीरक) "वेदांतदर्शन"
प्रभुदयालकृत वेदांततत्त्वप्रकाश भा-
षाभाष्य समेत। मुमुक्षुओंको अति-
सुगमतासे सुबोध ज्ञानोपयोगी बहुत
सरल भाषामें है ४-०

ब्रह्मसूत्र-माध्वभाष्य श्रीमदानन्दतीर्थ-

विरचित । जयतीर्थ मुनिविरचित तत्त्वप्रकाशिकाटीका सहित .... ६—०

ब्रह्मसूत्र—(वेदान्तदर्शन) भाष्यानुसार सरल भाषाटीकामें है .... १—४

भगवद्गीता—चिद्घनानन्दी "गूढार्थदीपिका" भाषाटीका । श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य पूज्यपाद श्रीस्वामी चिद्घनानन्दगिरिजी महोदयने सर्व सांसारिक लोगोंके उपकारार्थ "श्रीमच्छांकरभाष्य" के अनुसार पदच्छेद—अन्वयांक—तथा—पदार्थ सहित निर्माण किया है । यह मुमुक्षुगणोंको अतिसरल सुबोधयुक्त है तथा विलायती कपडेकी मनोहर जिल्द बँधी है .... ६—०

भगवद्गीता—आनंदगिरिकृत भाषा टीका

सहित। जिसमें–अन्वयकरके भावार्थ
स्पष्ट कियागयाहै. २–०
भगवद्गीता–सान्वय ब्रजभाषा दोहा सहित।
अत्युत्तम ग्लेजकाज १–४
तथा रफ कागज १–०
भगवद्गीता-वैष्णव हरिदासजीकृत भाषार्थ
तथा दोहा चौपाइयोंमें (परमा
नन्दप्रकाशिका १–०
भगवद्गीता-- अमृततरंगिणी- दोहा सहित
भाषाटीका पाकिटबुक.... ... ०–१०
भगवद्गीता--श्रीधरीटीका सहित ग्लेज
कागज १–०
तथा रफ कागज ०–१४

सम्पूर्ण पुस्तकोंका "बडासूचीपत्र" अलगहै मँगालीजिये.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस- बम्बई.